प्यारे नबी (सल्ल॰) के चार यार (1)

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰)

लेखक
इरफ़ान ख़लीली
अनुवादक
आबिद हामिदी

किताब के अन्दर

क्या	कहाँ
कुछ अल्फ़ाज़ का मतलब	5
कुछ किताब के बारे में	7
ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन *(रज़ि.)*	9
नाम और ख़ानदान	10
पैदाइश और बचपन	11
एक दिलचस्प वाक़िआ	12
जवानी	13
मुसलमान होना	14
इस्लाम की तब्लीग़	15
दीन फैलाने की धुन	16
आप *(रज़ि.)* के ज़रीए इस्लाम क़बूल करनेवाले	17
ग़ुलाम आज़ाद कराए	18
हब्शा की तरफ़ हिजरत	19
नबी *(सल्ल.)* की तसदीक़	20
सिद्दीक़ का लक़ब	21
नबी *(सल्ल.)* से मुहब्बत	22
जान पर खेल गए	23
हिजरत का इरादा	24
हिजरत	25
सौर गुफ़ा में	26
साँप निकल आया	27
.....और घबराहट जाती रही	28
क़ाफ़िला आगे बढ़ता है	29
मदीना पहुँच गए	30
मदीना की आबो-हवा	31
मस्जिदे-नबवी की तामीर	32
बद्र के क़ैदियों के साथ रहमदिली	33
दूसरी लड़ाइयों में भी शिरकत	34
हुदैबिया की सुलह	35
मक्का की फ़तह	36
कभी बाज़ी नहीं ले जा सकता	37

इमामत की ख़िदमत अंजाम दी 38
समझ-बूझ 39
ख़लीफ़ा हुए 40
तिजारत छोड़नी पड़ी 41
पहला काम 42
सुनहरी नसीहतें 43
झूठे नबियों के ख़िलाफ़ जंग 44
बाग़ियों का ख़ातिमा 46
ज़कात देने से इनकार करनेवालों से जंग 47
क़ुरआन मजीद जमा कराना 48
मुल्क के बाहर के फ़ितने 49
ईरान पर हमला 50
शाम (सीरिया) पर हमला 51
बीमारी 52
वसीयत 53
वफ़ात 54
अल्लाह ने सुन ली 55
आप *(रज़ि.)* कैसे थे? 56
अल्लाह का डर 57
ख़र्च में एहतियात 58
हराम से परहेज़ 59
ग़लती का एहसास 60
साथियों का ख़याल रखना 61
आप *(रज़ि.)* घमण्डी न थे 62
ख़ाकसारी और आजिज़ी 63
अल्लाह की राह में ख़र्च करना 64
अब दूध कौन दूहेगा 65
ख़ाब की ताबीर बयान करना 66
दूसरों की ख़िदमत 67
मेहमान-नवाज़ी 68
कोई नेक काम न छोड़ते 69
सबसे पहले 70
अच्छी और प्यारी नसीहतें 71

कुछ अल्फ़ाज़ का मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएंगे, जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोई परेशानी न हो। ऐसे अल्फ़ाज़ ये हैं :

अलैहि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'अलैहिस्सलाम'** यानी 'उन पर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ आदर और प्रेम सूचक ये शब्द बढ़ा देते हैं।

रज़ि॰ : इसका पूर्ण रूप है, **'रज़ियल्लाहु अन्हु'** इसके मानी हैं, 'अल्लाह उनसे राज़ी हो!' **'सहाबी'** के नाम के साथ यह आदर और प्रेम सूचक दुआ बढ़ा देते हैं।

'सहाबी' उस ख़ुश क़िस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। **सहाबी** का बहुवचन सहाबा है स्त्रीलिंग **सहाबिया** है।

रज़ि॰ अगर किसी सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं और अगर **सहाबा** के लिए आए तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** कहते हैं।

सल्ल॰ : इसका पूर्ण रूप है, **'सल-लल-लाहु अलैहि वसल्लम'** जिसका मतलब है, 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे!' हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो आदर और प्रेम के लिए दुआ के ये शब्द बढ़ा देते हैं।

नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

'अगर मैं किसी को दोस्त बनाता तो अबू-बक्र को ही दोस्त बनाता।'

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

"अगर मैं बनाता किसी को ख़लील
बनाता अबू बक्र ही को ख़लील"

(अबुल-मुजाहिद ज़ाहिद)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

कुछ किताब के बारे में

आज से लगभग सात साल पहले मैंने कम पढ़े लिखे लोगों और कम उम्रवालों के लिए प्यारे नबी *(सल्ल.)* की मुबारक ज़िन्दगी के हालात एक ख़ास अन्दाज़ से मुरत्तब किए थे और उसका नाम 'हमारे हुज़ूर *(सल्ल.)* रखा था। अल्लाह के फ़ज़्ल व करम से वह किताब बहुत पसन्द की गई, फ़ायदेमन्द भी साबित हुई और एक प्रदेश के कुछ स्कूलों ने उसे अपने यहाँ के निसाब में भी दाख़िल कर लिया।

जनाब जावेद इक़बाल साहब ने 'जो कि मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स के मैनेजर रह चुके हैं, अपनी ख़ाहिश ज़ाहिर की थी कि अगर इसी ढंग पर ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन की ज़िन्दगी के हालात भी मुरत्तब हो जाएँ तो बहुत अच्छा हो। मेरी भी यह तमन्ना थी, मगर दिल में दबी हुई थी। मैनेजर साहब की फ़रमाइश ने इसमें गर्मी पैदा कर दी और दुनिया व आख़िरत में अपने लिए भलाई समझते हुए मैंने यह काम शुरू कर दिया। यह किताब इस ख़ाहिश की पहली कड़ी है। पहले की तरह इस बार भी यह एहतिमाम किया गया है कि एक उनवान (शीर्षक) एक पेज पर ख़त्म हो जाए।

अल्लाह तआला से दुआ है कि यह किताब भी मक़बूल (प्रसिद्ध) हो और हमारे नौनिहालों के दिलों में हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* की मुहब्बत पैदा हो और यह किताब मेरे गुनाहों का कफ़्फ़ारा बन जाए।

आमीन।

इस किताब की तरतीब में नीचे लिखी किताबों से मदद ली गई है।

1.	ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन	मौलाना मुईनुद्दीन नदवी प्रकाशक : दारुलमुसन्निफ़ीन, आज़मगढ़
2.	तारीख़े-मिल्लत (भाग-2)	क़ाज़ी ज़ैनुल-आबिदीन मेरठी प्रकाशक : नदवतुल-मुसन्निफ़ीन, दिल्ली
3.	दस बड़े मुसलमान	शैख़ मुहम्मद इस्माईल पानीपती प्रकाशक : मक्तबा जदीद, लाहौर
4.	सहाबा व सहाबियात (रज़ि.)	माइल ख़ैराबादी प्रकाशक : मक्तबा हिजाब, रामपुर
5-	सीरतुस्सिद्दीक़ (रज़ि.)	मुहम्मद हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरवानी

उम्मीद है कि आप अपने मशवरों से ज़रूर नवाज़ेंगे।

इरफ़ान ख़लीली
मर्कज़ी दर्सगाह-इस्लामी, रामपुर, यू. पी.
11, अक्टूबर, 1988

ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन *(रज़ि.)*

'ख़ुलफ़ा' ख़लीफ़ा का बहुवचन है जिसके मानी हैं नायब, जानशीन (उत्तराधिकारी) क़ायम-मक़ाम और 'राशिदीन'; राशिद का बहुवचन है जिसके मानी हैं सीधे रास्ते पर चलनेवाले। इसलिए ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन का मतलब हुआ सीधे रास्ते पर चलनेवाले जानशीन (उत्तराधिकारी)।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को जब अल्लाह ने अपने पास बुला लिया तो आप *(सल्ल.)* के बाद आपके चार ख़लीफ़ा हुए।

1. हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)*
2. हज़रत उमर फ़ारूक़ *(रज़ि.)*
3. हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)*
4. हज़रत अली *(रज़ि.)*

इन ही चारों बुज़ुर्गों को ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन कहा जाता है और इन ही को चार यार भी कहते हैं। क्योंकि इन्होंने इस्लामी सल्तनत का सारा इन्तिज़ाम बिल्कुल उसी तरह चलाया जिस तरह ख़ुद प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ चलाया था। अपनी तरफ़ से उसमें कोई कमी या ज़्यादती नहीं की।

आज मैं आपको प्यारे नबी *(सल्ल.)* के ग़ार के यार (गुफा के साथी) और पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* की ज़िन्दगी के हालात बताना चाहता हूँ। उम्मीद है कि आप ग़ौर से पढ़ेंगे।

नाम और ख़ानदान

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का असली नाम अब्दुल्लाह था। कुन्नियत[1] अबू-बक्र और लक़ब[2] सिद्दीक़ और अतीक़ था।

आपके वालिद का नाम उस्मान और कुन्यत अबू-क़ुहाफ़ा थी। आपकी अम्मी जान का नाम सलमा और कुन्यत उम्मुल-ख़ैर थी। आपके दादा का नाम आमिर और नाना का नाम सख़र था। आप क़ुरैश क़बीले की शाख़ बनू-तैम से ताल्लुक़ रखते थे, जिसे मक्का वाले बड़ी इज़्ज़त की नज़र से देखते थे। छठी पुश्त में प्यारे नबी *(सल्ल.)* से आप *(रज़ि.)* का ख़ानदानी सिलसिला मिल जाता है। इस तरह प्यारे नबी *(सल्ल.)* और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* दोनों एक ही ख़ानदान से ताल्लुक़ रखते थे।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की अम्मी जान शुरू ही में मुसलमान हो गई थीं। लेकिन वालिद साहब मक्का फ़तह होने के बाद मुसलमान हुए। उनका इन्तिक़ाल सत्तानवे साल की उम्र में हुआ था। आख़िरी ज़माने में उनकी आँखों की रौशनी जाती रही थी।

---

1. असली नाम के अलावा बाप या बेटे की तरफ़ निस्बत करके जो नाम पुकारा जाए उसे 'कुन्यत' कहते हैं।
2. किसी ख़ूबी या किसी ख़ास बात की वजह से जो नाम रख देते हैं, उसे 'लक़ब' कहते हैं।

पैदाइश और बचपन

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का जन्म जून सन् 573 ई॰ में मक्का शहर में हुआ था। आप प्यारे नबी *(सल्ल.)* से लगभग ढाई साल छोटे थे। बचपन ही में हुज़ूर *(सल्ल.)* से आपकी दोस्ती हो गई थी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* की आदतें और बातें हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को बहुत अच्छी लगती थीं। जो बात प्यारे नबी *(सल्ल.)* में देखते उसे अपना लिया करते थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* साफ़-सुथरे रहते थे, आप *(सल्ल.)* के सच्चे दोस्त हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी पाक-साफ़ रहते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* बुरी बातों से दूर भागते थे, आप *(सल्ल.)* के साथी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी बुरी और गन्दी बातों से बचते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* शर्म व हया का बहुत ख़याल रखते थे, आप *(सल्ल.)* के बचपन के साथी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को भी बेहयाई की बातों से सख़्त नफ़रत थी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* हमेशा सच बोलते थे, आप *(सल्ल.)* के जिगरी दोस्त हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी झूठ से कोसों दूर रहते थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* दूसरों की मदद किया करते थे और किसी को भी सताते न थे, आप *(सल्ल.)* के रफ़ीक़ हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी ज़ुल्म व ज़्यादती से बचने और दूसरों से हमदर्दी करने की पूरी कोशिश करते थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* साथ-साथ रहते और साथ ही खेला करते थे।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बचपन ही से बहुत नेक, नर्म दिल और बड़ों की इज़्ज़त करनेवाले थे। इसी लिए मक्का के लोग भी आपसे बहुत मुहब्बत करते थे और आपको बड़ी इज़्ज़त की निगाह से देखते थे।

एक दिलचस्प वाक़िआ

उस ज़माने में सारे अरब में आम तौर पर लोग बुतों की पूजा करते थे। शराब पीते थे, जुआ खेलते थे और दूसरों का माल हड़प कर लिया करते थे। लेकिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* हमेशा इन बुराइयों से बचे रहे। खुद आपके घर की एक कोठरी में बुत रखे हुए थे। सब घरवाले उनकी पूजा किया करते थे। मगर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने कभी किसी बुत की पूजा नहीं की और न ही उनको सजदा किया। एक बार आपने एक बहुत दिलचस्प वाक़िआ सुनाया। फ़रमाने लगे कि एक बार मेरे वालिद साहब मुझे बुतोंवाली कोठरी में ले गए और एक बुत की तरफ़ इशारा करके कहने लगे, "यह तुम्हारा खुदा है, इसे सजदा करो।" जब वे यह कहकर चले गए तो मैं उस बुत के पास गया और उससे कहा, "मैं भूखा हूँ, मुझे खाना दे।" उसने कोई जवाब न दिया। फिर मैंने कहा, "मुझे कपड़ों की ज़रूरत है, मुझे कपड़ा दे।" फिर भी वह कुछ न बोला। आख़िर मैंने एक पत्थर उठाकर कहा, "देख मैं तुझे मारूँगा, तू अपने आप को बचा।" इस बार भी वह कुछ न बोला। मैंने वह पत्थर उसके सिर पर दे मारा। वह मुँह के बल गिर पड़ा और मैं कोठरी से बाहर निकल कर आ गया।

सच है! बुत मजबूर ही होते हैं। वे कुछ नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें पूजना बड़ी ही नादानी और नासमझी की बात है।

जवानी

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* अब जवान हो गए थे। क़ुरैश ख़ानदान का हर आदमी आप पर अपनी जान क़ुरबान करने के लिए तैयार रहता था। आप सबके काम आया करते थे। सभी लोग उनकी दिल से इज़्ज़त करते थे।

ख़ानदान में जब कोई किसी वजह से क़त्ल हो जाता था तो उसका मुक़द्दमा भी आप ही के पास आता था। आप ऐसे ढंग से समझा-बुझाकर फ़ैसला करते थे कि दोनों गरोह मानने पर मजबूर हो जाते थे और क़त्ल करनेवाले ख़ुशी-ख़ुशी जुर्माना अदा कर दिया करते थे। इस जुर्माने को, जो क़त्ल होनेवाले के घरवालों को अदा किया जाता है "ख़ूँ बहा" और "दियत" कहते हैं।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* शुरू ही से प्यारे नबी *(सल्ल.)* के गहरे दोस्त थे। अब तो ताल्लुक़ात और गहरे हो गए थे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* के बग़ैर चैन ही नहीं आता था। इसलिए अपना ज़्यादातर वक़्त नबी *(सल्ल.)* के साथ गुज़ारते थे। गुज़र औक़ात (जीवन यापन) के लिए आपने तिजारत (व्यापार) का पेशा इख़्तियार किया। उसमें इतनी तरक़्क़ी हुई कि मक्का के मालदार लोगों में गिने जाने लगे। आपने प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ कई बार तिजारती सफ़र भी किए।

मुसलमान होना

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को अल्लाह ने जब अपना नबी बनाया तो आप *(सल्ल.)* बहुत ही ख़ामोशी के साथ अपने ख़ास दोस्तों और क़रीबी रिश्तेदारों को इस्लाम की दावत देने लगे। जब यह हक़ीक़त हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को मालूम हुई तो उन्होंने बग़ैर कुछ पूछ-गछ किए बेझिझक इस्लाम क़बूल कर लिया। आप आज़ाद मर्दों में सबसे पहले मुसलमान हुए और ऐसा क्यों न होता, प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ रहते-रहते आपका दिल बिल्कुल पाक-साफ़ हो गया था। जो बात प्यारे नबी *(सल्ल.)* की मुबारक ज़बान से निकलती उसके बारे में हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* सोच भी नहीं सकते थे कि ग़लत हो सकती है। क्योंकि उन्होंने नबी *(सल्ल.)* को कभी झूठ बोलते नहीं सुना था। इस लिए जैसे ही आपने सुना कि अल्लाह ने नबी *(सल्ल.)* को अपना आख़िरी नबी बनाया है, फ़ौरन ही इस बात को मान लिया और सबसे पहले मुसलमान होने का शरफ़ (गौरव) हासिल किया।

उस वक़्त अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* की उम्र 37 साल थी।

इस्लाम की तब्लीग़

मुसलमान होते ही हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के दिल में यह तड़प पैदा हो गई कि मक्का के और लोग भी किसी तरह मुसलमान होकर अल्लाह के नेक और प्रिय बन्दे बन जाएँ और उसके अज़ाब से बच जाएँ।

पहले तो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* चुपके-चुपके मक्कावालों में अल्लाह का दीन फैलाते रहे। आपकी बातों से प्रभावित होकर बहुत-से लोग मुसलमान हो गए। इससे आपकी हिम्मत और बढ़ गई। आपने इसरार-करके प्यारे नबी *(सल्ल.)* से इजाज़त हासिल की और जहाँ भी ज़्यादा लोगों की भीड़ देखते वहाँ पहुँचकर लोगों के सामने इस्लाम की दावत पेश करते। भला इसे मक्का के काफ़िर और मुशरिक लोग कब बरदाश्त कर सकते थे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* पर टूट पड़े। इतना मारा कि आप लहू लुहान हो गए और बेहोश होकर गिर पड़े। नाफ़रमानों ने यह समझा कि मर गए हैं इसलिए उनको वहीं छोड़कर चले गए। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के क़बीलेवालों को तरस आ गया, उनको उठाकर घर पहुँचा दिया। जब आपको होश आया तो पहला जुमला (वाक्य) जो ज़बान से निकला वह यह था "प्यारे रसूल *(सल्ल.)* कैसे हैं? मुझे उनके पास ले चलो।"

देखा आपने, प्यारे नबी *(सल्ल.)* से, हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को कितनी मुहब्बत थी। अपनी तकलीफ़ की परवाह न की, नबी *(सल्ल.)* का हाल-चाल पहले मालूम किया। अल्लाह आपसे राज़ी हो।

दीन फैलाने की धुन

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को अल्लाह के दीन को फैलाने की धुन थी। जैसे ही उनके ज़ख़्म अच्छे हुए उन्होंने फिर लोगों से मिलना-जुलना और दीन की बातें समझाना शुरू कर दिया। आप *(रज़ि.)* अपने साथियों को इस तरह समझाते थे—

"भाइयो! आपने प्यारे रसूल *(सल्ल.)* को किसी मामले में भी झूठ बोलते नहीं सुना है। फिर भला सोचिए तो सही कि अल्लाह के बारे में वे कैसे झूठ बोलेंगे! ख़ुद हमने ही तो उनको 'अमीन' और 'सादिक़' का लक़ब दिया है और फिर वे जो कुछ कहते हैं हमारी भलाई के लिए ही तो कहते हैं। वे हमें जहन्नम की दहकती हुई आग से बचाना चाहते हैं। और फिर इन सब बातों का वे हमसे कोई बदला भी तो नहीं चाहते। वे हमारा भला चाहनेवाले हैं। वे यही तो कहते हैं कि सारी कायनात और हम सबका मालिक, आक़ा (स्वामी), पालनहार और हाकिम सिर्फ़ अल्लाह ही है। उसी ने हम सबको पैदा किया, वही हमें रोज़ी देता है और एक दिन वही हमें इस दुनिया से उठा लेगा। फिर हमने जो कुछ यहाँ किया है उसका हिसाब करके अच्छाई का अच्छा बदला और बुराई की सज़ा देगा। ये बुत, जो हमने ख़ुद बना लिए हैं, हमें कोई फ़ायदा या नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। इनकी पूजा-पाठ करना बेकार है। हमें अल्लाह के हुक्म पर उसी तरह चलना चाहिए जिस तरह प्यारे नबी *(सल्ल.)* बताते हैं।"

आप *(रज़ि॰)* के ज़रीए इस्लाम क़बूल करनेवाले

हुज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की सीधी-सादी और सच्ची बातें लोगों को आकर्षित और उनके दिलों में घर करने लगीं। वे अपने चाल-चलन और बर्ताव के बारे में सोचने लगे। और फिर समझदार लोगों की एक बड़ी तादाद मुसलमान हो गई। उनमें से कुछ ख़ास लोगों के नाम ये हैं—

हज़रत उस्मान बिन-अफ़्फ़ान *(रज़ि.)*
हज़रत ज़ुबैर बिन-अव्वाम *(रज़ि.)*
हज़रत अब्दुर्रहमान बिन-औफ़ *(रज़ि.)*
हज़रत साद बिन-अबी-वक़्क़ास *(रज़ि.)*
हज़रत तलहा बिन-अब्दुल्लाह *(रज़ि.)*
हज़रत उस्मान बिन-मतनून *(रज़ि.)*
हज़रत उबैदा बिन-जर्राह *(रज़ि.)*
हज़रत अबू-सलमा *(रज़ि.)*
हज़रत ख़ालिद बिन-सईद-बिन-आस *(रज़ि.)*

ग़ुलाम आज़ाद कराए

दीन फैलाने के लिए प्यारे नबी *(सल्ल.)* को जितनी रक़म की भी ज़रूरत पड़ती थी हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* उसे पूरा करते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनकी सारी दौलत अल्लाह ही की दी हुई है। इसलिए इसका सबसे अच्छा इस्तेमाल यही है कि इसे अल्लाह ही के रास्ते में ख़र्च किया जाए। यही वजह है कि आप दीन के कामों में बे धड़क अपनी दौलत ख़र्च किया करते थे।

बहुत-से ग़ुलाम और लौंडियों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। यह देखकर उनके आक़ा उनपर ऐसे-ऐसे ज़ुल्म करते थे जिनको देख और सुनकर लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने जब उनकी ये तकलीफ़ें देखीं तो बरदाश्त न कर सके। उनके आक़ाओं से बात-चीत की और मुँह माँगे पैसे देकर उनको आज़ाद करा लिया। जिन्हें आपने आज़ाद कराया उनके नाम ये हैं :

हज़रत बिलाल *(रज़ि.)*
हज़रत नज़ीरा *(रज़ि.)*
हज़रत बिन्ते-नहदिया *(रज़ि.)*
हज़रत आमिर बिन-फ़ुहैरा *(रज़ि.)*
हज़रत जारिया *(रज़ि.)*

हब्शा की तरफ़ हिजरत

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने घर ही में एक छोटी-सी मस्जिद बना ली थी और उसी में अल्लाह की इबादत किया करते थे। इसके अलावा आप क़ुरआन मजीद ऐसी प्यारी आवाज़ में ज़ोर-ज़ोर से पढ़ा करते थे कि सुननेवालों के दिल ख़ुद ही उनकी तरफ़ खिंचते थे। इस्लाम के दुश्मन भला इसे कब गवारा कर सकते थे। उन्होंने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को बहुत ज़्यादा सताना शुरू कर दिया। आख़िरकार मजबूर होकर उन्होंने प्यारे नबी *(सल्ल.)* से हब्शा की तरफ़ हिजरत कर जाने की इजाज़त ले ली और मक्का से रवाना हो गए।

रास्ते में मक्का के एक सरदार इब्ने-दग़ुन्ना से मुलाक़ात हो गई। उसने पूछा, "ऐ अबू-बक्र! कहाँ का इरादा है?" हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* अपनी सारी परेशानियाँ बयान कर दीं। इब्ने-दग़ुन्ना ने उन्हें पनाह दे दी और अपने साथ वापस ले आया। लेकिन इस्लाम-दुश्मनों के कहने से यह शर्त लगा दी कि क़ुरआन मजीद को आप ज़ारे-ज़ोर से नहीं पढ़ेंगे। भला यह हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के लिए कैसे मुमकिन था। कुछ दिनों के बाद फिर ज़ोर-ज़ोर से क़ुरआन मजीद पढ़ना शुरू कर दिया। जब बात फिर बढ़ी तो आप इब्ने-दग़ुन्ना से कहने लगे, "तुम मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो। तुम्हारी पनाह के मुक़ाबले में मुझे अल्लाह और उसके रसूल *(सल्ल.)* की पनाह काफ़ी है।"— देखा आपने! हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने तकलीफ़ें उठानी तो पसन्द कर लीं मगर ऊँची आवाज़ से क़ुरआन मजीद न पढ़ने की शर्त क़बूल न की।

नबी *(सल्ल.)* की तसदीक़

उसी दौरान की बात है कि अल्लाह ने रातों-रात प्यारे नबी *(सल्ल.)* को आसमान की सैर कराई। जन्नत-दोज़ख़ का मंज़र दिखाया और आप *(सल्ल.)* से बहुत-सी बातें भी कीं। इसी को हम मेराज कहते हैं। सुबह को नबी *(सल्ल.)* ने मेराज का पूरा हाल लोगों को बताया। अब क्या था, मक्का के सरदार नबी *(सल्ल.)* का मज़ाक़ उड़ाने लगे। अबू-जहल दौड़ा-दौड़ा हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के पास पहुँचा और बोला, "अरे भई! कुछ सुना, तुम्हारे साहब ने आज एक और नई बात निकाली है। लोगों से कह रहे हैं कि उनके अल्लाह ने रात ही रात में उनको बैतुल-मक़दिस और आसमानों की सैर कराई है। हद कर दी! आख़िर उनके दिमाग़ को क्या हो गया है?"

यह सुनकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का चेहरा लाल हो गया और झट बोल उठे, "मैं तसदीक़ करता हूँ कि अगर नबी *(सल्ल.)* ऐसा कहते हैं तो बिल्कुल सच है, क्योंकि वे आज तक कभी झूठ नहीं बोले। इसी वजह से तो हम सब उन्हें 'सादिक़' कहते हैं।"

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* का यह जवाब सुनकर अबू-जहल की सारी उमंगों पर जैसे पानी फिर गया और वह अपना-सा मुँह लिए वापस चला गया।

सिद्दीक़ का लक़ब

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* सीधे नबी *(सल्ल.)* के पास गए। देखा कि लोग आप *(सल्ल.)* के चारों तरफ़ भीड़ लगाए हुए हैं और आप *(सल्ल.)* का मज़ाक़ उड़ा रहे हैं। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने आते ही लोगों से कहा, "ठहरो!" फिर बोले, "लोगो! मैंने बैतुल-मक़दिस देखा है। नबी *(सल्ल.)*, आप बताइए कि उसके कितने दरवाज़े हैं और कौन-सा दरवाज़ा किस तरफ़ है।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सबकुछ ठीक-ठीक बता दिया।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने बुलन्द आवाज़ से एलान किया, "लोगो! नबी *(सल्ल.)* जो कुछ फ़रमा रहे हैं बिल्कुल ठीक है। इसमें कोई शक व शुब्हे की गुंजाइश नहीं है।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का यह एलान सुनकर इस्लाम-दुश्मनों को फिर मुँह की खानी पड़ी और अपना जैसा मुँह लिए तितर-बितर हो गए।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* उस एलान से बहुत ख़ुश हुए और हज़रत अबू-बक्र *(सल्ल.)* को 'सिद्दीक़' (हमेशा सच बोलनेवाला) का लक़ब दिया। उस दिन से सारे मुसलमान उनको अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* कहने लगे।

नबी *(सल्ल.)* से मुहब्बत

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* से बहुत मुहब्बत करते थे। नबी *(सल्ल.)* के लिए अपनी जान तक क़ुरबान करने के लिए हर वक़्त तैयार रहते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* काबा के पास नमाज़ पढ़ रहे थे। थोड़ी ही देर में काफ़िर सरदारों का एक गरोह वहाँ आ पहुँचा। उन लोगों ने नबी *(सल्ल.)* को नमाज़ पढ़ते देखा तो ग़ुस्से से जल गए। उनमें का एक सरदार उक़बा आगे बढ़ा। उसने अपनी चादर नबी *(सल्ल.)* की गर्दन में डालकर बल देना शुरू कर दिया और फिर खींचने लगा। प्यारे नबी *(सल्ल.)* का इससे दम घुटने लगा। यह देखकर सब के सब मौजूद सरदार बहुत ख़ुश हुए और हँसी उड़ाने लगे।

किसी तरह इस बात की ख़बर हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* को मिल गई। उस वक़्त आप *(रज़ि.)* किसी ज़रूरी काम में लगे हुए थे। सुनते ही अपना काम छोड़ दिया और फ़ौरन काबा की तरफ़ दौड़ पड़े। काबा पहुँचकर जब अपनी आँखों से यह मंज़र देखा तो आप *(रज़ि.)* बेताब हो गए। उक़बा को ज़ोर का धक्का देकर हटा दिया। अपनी जान की परवाह न करते हुए नबी *(सल्ल.)* की गर्दन से चादर खोलकर एक तरफ़ फेंक दी। मक्का के सरदारों को, जो वहाँ मौजूद थे, बहुत बुरा-भला कहा और प्यारे नबी *(सल्ल.)* को साथ लेकर चले आए। सब के सब सरदार मुँह देखते रह गए।

जान पर खेल गए

एक घटना को हज़रत अली *(रज़ि.)* ने इस तरह बयान किया है। वे कहते हैं कि एक दिन मैं काबा में गया। वहाँ प्यारे नबी *(सल्ल.)* मौजूद थे। कुछ क़ुरैशी सरदार आप *(सल्ल.)* को अपने घेरे में लिए हुए परेशान कर रहे थे। कोई आप *(सल्ल.)* को ज़ोर-ज़ोर से धक्का देता, तो कोई अपनी तरफ़ खींच रहा था। नबी *(सल्ल.)* बदहवास हुए जा रहे थे। क़ुरैशी सरदार ग़ुस्से की हालत में कहते जा रहे थे, "तू ही तो है जो हमारे ख़ुदाओं को बुरा-भला कहता है और उनको नहीं मानता।"

हज़रत अली *(रज़ि.)* कहते हैं कि उस वक़्त प्यारे नबी *(सल्ल.)* बुरी तरह उनके चँगुल में फँसे हुए थे। हममें से किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि आप *(सल्ल.)* की मदद को पहुँचे। लेकिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* अपनी जान पर खेल गए। भीड़ को चीरते हुए घुस गए। किसी को धक्का दिया, किसी को मारा। आख़िरकार नबी *(सल्ल.)* को उनके फन्दे से निकाल लाए और क़ुरैशवालों को बहुत फटकार लगाई। डाँटते हुए कहा, "बदनसीबो! तुम एक ऐसे आदमी को क़त्ल करना चाहते हो जो तुम्हारी ही भलाई चाहता है और कहता है कि हमारा रब सिर्फ़ अल्लाह है।"

हिजरत का इरादा

काफ़िरों और मुशरिकों की ज़्यादतियाँ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थीं। मुसलमानों को सताने और उनपर ज़ुल्म ढाने के नित नए तरीक़े अपनाए जा रहे थे जिसकी वजह से उनकी ज़िन्दगी अजीरन (दूभर) हो गई थी। आख़िरकार मजबूर होकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने मदीना को हिजरत कर जाने का इरादा किया और ख़ामोशी के साथ इसके लिए तैयारियाँ शुरू कर दीं। प्यारे नबी *(सल्ल.)* को जब इस बात का पता चला तो आप *(सल्ल.)* ने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को बुलाकर पूछा, "अबू-बक्र! क्या इरादा है?"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान। आप देख रहे हैं कि काफ़िरों की शरारतें बढ़ती जा रही हैं। मैं सोच रहा हूँ कि मदीना चला जाऊँ।"

नबी *(सल्ल.)* ने आप *(रज़ि.)* को तसल्ली दी और फ़रमाया, "अबू-बक्र! जल्दी न करो। अभी कुछ दिन ठहरो। हो सकता है कि अल्लाह मुझे भी हिजरत का हुक्म दे दे।"

यह बात सुनकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ख़ुशी से फूले न समाए कि अब हिजरत में भी प्यारे नबी *(सल्ल.)* का साथ नहीं छूटेगा। अब वे अल्लाह के हुक्म का इन्तिज़ार करने लगे।

हिजरत

मक्का के सरदारों ने जब यह देखा कि एक-एक करके सारे मुसलमान मदीना चले जा रहे हैं और मक्का मुसलमानों से लगभग ख़ाली होता जा रहा है तो उनको चिन्ता होने लगी कि अगर मुहम्मद *(सल्ल.)* भी मक्का छोड़कर मदीना चले गए और वहाँ के लोग भी मुसलमान हो गए तो उनकी ताक़त बहुत बढ़ जाएगी। यह ख़याल आते ही एक खलबली सी मच गई। उनमें आपस में मशवरे होने लगे। आख़िरकार उन्होंने यह तय किया कि (तौबा! तौबा!) प्यारे नबी *(सल्ल.)* को क़त्ल कर देना ही मुनासिब है। उन दुश्मनों ने अपने इस नापाक इरादे पर अमल करने के लिए एक दिन मुक़र्रर कर लिया और तय पाया कि उस रोज़ रात शुरू होते ही प्यारे नबी *(सल्ल.)* के घर को घेर लिया जाए और जब सुबह-सुबह काबा में जाने के लिए मुहम्मद *(सल्ल.)* निकलें तो सब के सब एक साथ उनपर हमला कर दें।

दुश्मनों ने अपनी नापाक साज़िश पर अमल करने के लिए जो दिन तय किया था उसी रोज़ अल्लाह ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* को रातों-रात मक्का से मदीना हिजरत कर जाने का हुक्म दिया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* सीधे हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के यहाँ तशरीफ़ ले गए और उनको अल्लाह का यह फ़ैसला सुना दिया। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने पूछा, "क्या मुझे भी साथ चलने की इजाज़त है?"

नबी *(सल्ल.)* ने जवाब दिया, "ज़रूर-ज़रूर, बस अब तैयारी कर लो।"

नबी *(सल्ल.)* की मुबारक ज़बान से यह सुनकर हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* ख़ुशी से फूले नहीं समा रहे थे। क्योंकि उन्हें इस लम्बे और कठिन सफ़र में नबी *(सल्ल.)* की ख़िदमत करने का मौक़ा जो मिल रहा था। ऊँटनियाँ तो पहले ही से तैयार कर रखी थीं। अब सफ़र का ज़रूरी सामान भी जल्दी-जल्दी इकट्ठा करने लगे।

सौर गुफा में

रात का वक़्त था। मक्का के चुने हुए बहादुरों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* के मकान को हर तरफ़ से घेर रखा था और पहरा दे रहे थे। आप *(सल्ल.)* सुकून के साथ लेटे हुए आराम कर रहे थे। आधी रात जब बीत गई, नबी *(सल्ल.)* उठे, इत्मीनान के साथ बाहर निकले और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर की ओर रवाना हो गए। पहरा देनेवाले या तो सब के सब ऊँघ गए थे या फिर अल्लाह ने उनकी आँखों पर परदा डाल दिया। जो भी हो, वे प्यारे नबी *(सल्ल.)* को देख न सके।

नबी *(सल्ल.)* हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर पहुँचे। वे बेचैनी से आप *(सल्ल.)* का इन्तिज़ार कर रहे थे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने बेटे अब्दुल्लाह *(रज़ि.)*, बेटी हज़रत असमा *(रज़ि.)* और ग़ुलाम आमिर-बिन-फ़ुहैरा *(रज़ि.)* से कुछ ज़रूरी बातें कहीं और खुद नबी *(सल्ल.)* के साथ रवाना हो गए। मक्का के पास ही एक पहाड़ है। उसमें एक ग़ार (गुफा) है जिसे ग़ारे-सौर कहते हैं। दोनों साथी उसी ग़ार में पहुँचे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* गुफा में पहले दाख़िल हुए। उसकी सफ़ाई वग़ैरा की। बहुत-से छेद थे उनको बन्द किया। इसके बाद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ग़ार के अन्दर दाख़िल हुए।

साँप निकल आया

प्यारे नबी *(सल्ल.)* अपना हर काम अल्लाह के हवाले कर दिया करते थे और उसके नतीजे की ज़्यादा फ़िक्र नहीं करते थे। आप *(सल्ल.)* अच्छी तरह जानते थे कि अल्लाह जो कुछ करता है उसमें बन्दे की भलाई ही होती है। इसी लिए तो आप *(सल्ल.)* का दिल हमेशा सुकून और इत्मीनान से भरा रहता था। ग़ार में पहुँचकर जब कुछ इत्मीनान हुआ तो आप *(सल्ल.)* को नींद आने लगी और आप *(सल्ल.)* हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के ज़ानू पर सिर रखकर सो गए।

थोड़ी ही देर हुई थी कि एक बिल से, जो बन्द करने से रह गया था, एक साँप ने फन निकाला। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* परेशान हो गए कि कहीं यह निकलकर नबी *(सल्ल.)* को डस न ले। बेअदबी के ख़याल से नबी *(सल्ल.)* को जगाना भी नहीं चाहते थे। इसलिए अपनी जान पर खेल गए और अपने पैर के अँगूठे से बिल को बन्द कर दिया। साँप ने फ़ौरन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को डस लिया। लेकिन आप टस से मस न हुए। जब तकलीफ़ ज़्यादा बढ़ गई तो आँखों से आँसू टपकने लगे। अचानक आँसू का एक क़तरा नबी *(सल्ल.)* के मुबारक चेहरे पर गिरा। आप *(सल्ल.)* की आँख खुल गई। हाल पूछा। जब सारी बात मालूम हुई तो आप *(सल्ल.)* उठे और अपने मुँह का लुआब (लार) उस जगह पर लगा दिया जहाँ साँप ने डसा था। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की तकलीफ़ जाती रही।

.....और घबराहट जाती रही

इधर मक्का के सरदार नबी *(सल्ल.)* को ढूँढने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाए हुए थे। कोई जगह ऐसी न थी जहाँ वे दोनों साथियों को तलाश न कर रहे हों।

एक टोली नबी *(सल्ल.)* को तलाश करती हुई ग़ारे-सौर पर भी आ गई। उनकी परछाइयाँ गुफा के अन्दर पड़ने लगीं। यह देखकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बहुत घबराए। उन्हें अपनी जान से ज़्यादा नबी *(सल्ल.)* का ख़याल था। यह सोच-सोचकर आप काँपने लगे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने जब हज़रत अबू-बक्र *(सल्ल.)* का यह हाल देखा तो उनको तसल्ली दी और फ़रमाया, "डरो नहीं, बेशक अल्लाह हमारे साथ है।" नबी *(सल्ल.)* की मुबारक ज़बान से यह कलिमा सुनकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की घबराहट बिल्कुल जाती रही और उधर दुश्मनों की टोली इधर-उधर देखकर वापस चली गई।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ तीन दिन तक ग़ारे-सौर में रुके रहे।

तीनों दिन आप *(रज़ि.)* की बेटी हज़रत असमा *(रज़ि.)* और ग़ुलाम हज़रत आमिर-बिन-फ़ुहैरा *(रज़ि.)* भेड़-बकरियों का रेवड़ लेकर ग़ारे-सौर के पास आते रहे। ताज़ा दूध और घर से लाया हुआ खाना-पानी दोनों को पहुँचाते रहे। वहाँ से वापसी पर हज़रत असमा *(रज़ि.)* अपने पैरों के निशान मिटाती हुई आतीं ताकि दुश्मन को पता न चल सके कि कोई यहाँ आया था। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने बेटे हज़रत अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* को यह काम सौंपा था कि दिन भर वे मक्कावालों में उठें-बैठें और यह देखें कि लोग क्या सोचते और मशवरा करते हैं। हालात का अन्दाज़ा करें और रोज़ाना शाम को आकर सब बातों की ख़बर दे दिया करें। हज़रत अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* अपना यह काम पाबन्दी से करते रहे। इस तरह पूरे तीन दिन बीत गए।

क़ाफ़िला आगे बढ़ता है

चौथे दिन प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मदीना की तरफ़ रवानगी का इरादा ज़ाहिर किया। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने बेटे, बेटी और ग़ुलाम को सफ़र का सामान और ऊँटनियाँ लेकर आने का हुक्म दिया। जब यह सारा सामान आ गया तो ख़ामोशी के साथ यह क़ाफ़िला एक दूसरे रास्ते से मदीना की तरफ़ रवाना हो गया। रास्ता बताने के लिए एक भरोसेमन्द ग़ैर-मुस्लिम अब्द-बिन-उरैक़त को साथ ले लिया गया।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने रास्ते की ज़रूरत के लिए अपने ग़ुलाम आमिर-बिन-फ़ुहैरा *(रज़ि.)* को अपने पीछे बिठा लिया था। इस तरह इस क़ाफ़िले में दो के बजाए चार आदमी हो गए।

रास्ते में एक जान पहचानवाला मिला। उसने हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की तरफ़ इशारा करके पूछा, "ऐ अबू-बक्र, यह तुम्हारे साथ कौन है?" आप असल बात बताना नहीं चाहते थे इसलिए यह कहकर टाल दिया कि "ये हमारे रहनुमा हैं।" देखा आपने, कैसा अच्छा जवाब दिया! झूठ भी नहीं बोले और प्यारे नबी *(सल्ल.)* का नाम भी नहीं बताया।

इस तरह आप जगह-जगह ठहरकर आराम करते हुए और दुश्मनों की नज़रों से बचते हुए सफ़र करते रहे। सफ़र लम्बा था। कई दिन लग गए।

मदीना पहुँच गए

आख़िरकार रबीउल-अव्वल की बारहवीं तारीख़ को और नुबूव्वत के चौदहवें साल यह मुबारक क़ाफ़िला ख़ैरियत के साथ मदीना के क़रीब पहुँच गया। मदीना के लोग, ख़ास तौर पर अनसार, प्यारे नबी *(सल्ल.)* का बेसब्री से इन्तिज़ार कर रहे थे। आप *(सल्ल.)* को देखकर मारे ख़ुशी के आपे से बाहर हुए जा रहे थे। सब एक जुलूस की शक्ल में क़ुबा पहुँचे। वहाँ नबी *(सल्ल.)* के साथ हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* कुछ दिन ठहरे। इसके बाद मदीना आ गए। प्यारे नबी *(सल्ल.)* हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी *(रज़ि.)* के यहाँ ठहरे और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने हज़रत ख़ारिजा-बिन-ज़ैद-बिन अबी-ज़ुहैर *(रज़ि.)* के यहाँ क़ियाम किया। बाद में यही उनके दीनी भाई क़रार पाए।

नारे-नमरूद को किया गुलज़ार
दोस्त को यूँ बचा दिया तूने
'दाग़' देहलवी

मदीना की आबो-हवा

कुछ दिनों के बाद हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के बीवी-बच्चे भी हज़रत तलहा *(रज़ि.)* के साथ मदीना पहुँच गए। लेकिन यहाँ की आबो-हवा रास न आई। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* और उनकी छोटी बेटी हज़रत आइशा *(रज़ि.)*, जिनकी शादी प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ मक्का ही में हो चुकी थी, दोनों बहुत ज़्यादा बीमार हो गए। चलना-फिरना मुश्किल हो गया। नबी *(सल्ल.)* ने मदीना की आबो-हवा के लिए दुआ फ़रमाई। अल्लाह ने आप *(सल्ल.)* की दुआ क़बूल फ़रमा ली। मदीने की आबो-हवा बहुत अच्छी हो गई। जितने लोग बीमार थे सब के सब सेहतमन्द हो गए।

मदीना जा के हम समझे तक़द्दुस इसको कहते हैं
हुआ पाकीज़ा पाकीज़ा, फ़िज़ा संजीदा संजीदा

— अल्लामा 'इक़बाल'

मस्जिदे-नबवी की तामीर

अब तो इधर-उधर से सारे मुसलमान आ-आकर मदीने में जमा होने लगे। इसलिए अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने सबसे पहले मस्जिद बनवाने का ख़याल ज़ाहिर किया। पास ही कुछ ज़मीन खाली पड़ी हुई थी। यह ज़मीन दो यतीम बच्चों की थी। मस्जिद के लिए आप *(सल्ल.)* ने इसको पसन्द किया। वह ज़मीन हासिल कर ली गई। यतीम बच्चों के सरपरस्त तो इस ज़मीन को बग़ैर क़ीमत के देना चाहते थे। मगर यतीमों के ख़याल से प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने इसे क़बूल नहीं किया बल्कि इसकी ज़्यादा क़ीमत अदा की। यह रक़म हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने पास से अदा की थी। अब वे ख़ाली हाथ रह गए थे। उनकी सारी दौलत ख़त्म हो चुकी थी। मक्का में ग़ुलामों को आज़ाद कराने पर उन्होंने अच्छी-ख़ासी रक़म ख़र्च की थी। पाँच हज़ार बचे थे सो वह ज़मीन के अदा कर दिए।

मस्जिद बहुत जल्द बनकर तैयार हो गई। उसके बनाने में भी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने हाथ बटाया।

बद्र के क़ैदियों के साथ रहमदिली

मक्का को मुसलमानों ने इसी लिए छोड़ा था कि वहाँ वे आज़ादी के साथ अल्लाह की इबादत नहीं कर सकते थे। इबादत करना तो बड़ी दूर की बात है, वे वहाँ अल्लाह का नाम भी नहीं ले सकते थे। दुश्मनों ने मदीना में भी चैन से न बैठने दिया।

मुसलमानों को अभी मदीना आए हुए एक ही साल हुआ था कि मक्का के एक हज़ार काफ़िरों ने चढ़ाई कर दी। उन सब के पास लड़ाई करने का पूरा-पूरा सामान था। उनके मुक़ाबले में मुसलमान सिर्फ़ तीन सौ तेरह (313) थे। उनमें से बहुतों के पास लड़ाई का सामान भी न था। लेकिन मुसलमानों के पास ईमान की ताक़त थी। बद्र के मैदान में बड़ी घमासान की लड़ाई हुई। लड़ाई का नतीजा यह निकला कि मुसलमानों को जीत हासिल हुई और इस्लाम के दुश्मनों को हार का मुँह देखना पड़ा और वे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। उनके सत्तर सरदार मारे गए और इतने ही क़ैद कर लिए गए। जंग में हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* लड़ते भी रहे और अपनी जान पर खेलकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हिफ़ाज़त भी करते रहे।

जब यह मसला सामने आया कि जो लोग गिरफ़्तार होकर आए हैं उनके साथ क्या बरताव किया जाए तो सबने अपनी राय दी। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* चूँकि बहुत रहमदिल थे, इसलिए उन्होंने यह मशवरा दिया कि "ये सब अपने ही भाई-बन्धु हैं। इनके साथ रहमो-करम का बरताव किया जाए और फ़िद्या[1] लेकर छोड़ दिया जाए।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* को हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का यह मशवरा बहुत ही पसन्द आया और उसी के मुताबिक़ अमल किया गया।

1. किसी क़ैदी के बदले में जो माल देकर उसे छुड़ाया जाता है, उस माल को फ़िद्या कहते हैं।

दूसरी लड़ाइयों में भी शिरकत

बद्र की जंग के बाद भी इस्लाम के दुश्मनों ने मुसलमानों को चैन से बैठने नहीं दिया। वे क़रीब-क़रीब हर साल मदीना पर चढ़ाई करते रहे। मुसलमान डटकर उनका मुक़ाबला करते और उनको शिकस्त देते। वे लोग उस वक़्त तो मैदान छोड़कर भाग जाते मगर दूसरों के बहकावे में आकर फिर दूसरी जंग के लिए तैयारियाँ शुरू कर देते। इसलिए प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सोचा कि उन फ़सादी क़बीलों पर भी हमला किया जाए जो उनको भड़काते हैं और उनका बिल्कुल ख़ातिमा कर दिया जाए। इसके लिए कई जंगें हुईं। हर लड़ाई में मुसलमानों को ही फ़तह हासिल हुई। यह हक़ीक़त है कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* के ज़माने में कोई भी लड़ाई ऐसी नहीं हुई जिसमें हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* शरीक न हुए हों और उन्होंने बहादुरी के जौहर न दिखाए हों। इस्लाम को फैलाने के लिए हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपनी जान तक की परवाह न की और जान जोखिम में डालकर इस्लाम का बोलबाला रखा।

हुदैबिया की सुलह

सन् 06 हिजरी में प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने इरादा ज़ाहिर किया कि मक्का जाकर ख़ान-ए-क़ाबा की ज़्यारत की जाए। आप *(सल्ल.)* ने तमाम सहाबा *(रज़ि.)* से मशवरा किया। इस मौक़े पर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अर्ज़ किया, "आप ख़ान-ए-काबा का तवाफ़ करने की ग़रज़ से मक्का जाना चाहते हैं लड़ाई के लिए नहीं, इसलिए ज़रूर चलिए।" आप *(सल्ल.)* चौदह सौ सहाबा *(रज़ि.)* के साथ रवाना हो गए।

जब हुदैबिया के मक़ाम पर पहुँचे तो क़ुरैश के लोगों ने आगे बढ़ने से रोक दिया। उनसे लड़ने के बजाय नबी *(सल्ल.)* ने सुलह कर लेना ज़्यादा मुनासिब समझा। इस तरह दोनों फ़रीक़ों (पक्षों) में समझौता हो गया। इसे हुदैबिया की सुलह कहते हैं। देखने में इसकी शर्तें मुसलमानों के लिए ज़्यादा फ़ायदेवाली न थीं। इसमें कुछ सहाबा को बुरा भी लगा कि आख़िर यह समझौता इतना दबकर क्यों किया जा रहा है। ख़ासतौर पर हज़रत उमर *(रज़ि.)* बहुत बेचैन थे। इस मौक़े पर भी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने बहुत बड़ी ख़िदमत अंजाम दी। आप *(रज़ि.)* ने फ़रमाया, "प्यारे नबी *(सल्ल.)* अल्लाह के रसूल हैं, आप *(सल्ल.)* कोई भी काम अल्लाह की मरज़ी के ख़िलाफ़ नहीं करते।" यह बात सुनकर सबकी बेचैनी दूर हो गई।

मक्का की फ़तह

क़ुरैश हुदैबिया की सुलह की शर्तों की पाबन्दी न कर सके। इसलिए प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मक्का फ़तह करने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। सन् 08 हिजरी में दस हज़ार की फ़ौज लेकर आप *(सल्ल.)* ख़ामोशी के साथ मक्का की तरफ़ रवाना हो गए। मक्कावालों को कानों-कान ख़बर न हुई। जब मुसलमानों की फ़ौज मक्का के बिल्कुल क़रीब पहुँच गई तब उनको पता चला। अब तो उनके हाथों के तोते उड़ गए। अपने आपको बेबस पाकर उन्होंने ख़ामोशी अपना ली। उनमें क़ुरैश के वे बड़े-बड़े सरदार भी थे जिन्होंने बराबर तेरह साल तक प्यारे नबी *(सल्ल.)* और उनके प्यारे साथियों *(रज़ि.)* को तकलीफ़ों पर तकलीफ़ें पहुँचाई थीं। यहाँ तक कि उन्होंने आप *(सल्ल.)* को, (तौबा-तौबा) क़त्ल कर देने तक की साज़िशें की थीं। वे भी ख़ामोश सिर झुकाए खड़े दिल ही दिल में काँप रहे थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* रहमत ही रहमत थे। आप *(सल्ल.)* ने किसी से बदला नहीं लिया। सबको माफ़ कर दिया।

उधर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* दौड़े-दौड़े अपने वालिद अबू-क़ुहाफ़ा के पास गए। उनकी ख़ैरियत पूछी। इस्लाम क़बूल करने के लिए उनको तैयार किया। मौक़ा ग़नीमत जाना और हुज़ूर *(सल्ल.)* के पास उनको ले आए। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने बड़ी इज़्ज़त के साथ उनको बिठाया। इस्लाम के बारे में बताया और कलिमा पढ़ाकर मुसलमान कर लिया।

अब तो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की ख़ुशी की कोई इन्तिहा न रही। सारा ख़ानदान तो पहले ही मुसलमान हो चुका था। सिर्फ़ वालिद और एक बेटे अब्दुर्रहमान बाक़ी रह गए थे। वे भी मुसलमान हो गए।

कभी बाज़ी नहीं ले जा सकता

सन् 09 हिजरी में जब प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने तबूक की लड़ाई की तैयारी के लिए चन्दा जमा करने का एलान किया तो हज़रत उमर *(रज़ि.)* दिल ही दिल में बहुत खुश थे कि वे आज हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* पर बाज़ी ले जाएँगे, क्योंकि उस वक़्त उनके पास कई हज़ार दिरहम मौजूद थे और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ख़ाली हाथ थे।

अपनी कुल रक़म में से आधी हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने बाल-बच्चों के लिए घर पर छोड़ी और आधी रक़म लेकर खुश-खुश नबी *(सल्ल.)* के पास पहुँचे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने पूछा, "ऐ उमर! क्या लाए हो?"

उन्होंने जवाब दिया, "आधा माल बाल-बच्चों के लिए छोड़ आया हूँ और आधा आप *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर है।"

इतने में हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* अपना सारा सामान लिए हुए आ पहुँचे। हुज़ूर *(सल्ल.)* ने उनसे भी यही सवाल पूछा "ऐ अबू-बक्र! क्या लाए हो?"

उन्होंने जवाब दिया, "घर में जो कुछ था सब ले आया हूँ।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सवाल किया, "बाल बच्चों का भी तो कुछ हक़ है?" हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "उनके लिए अल्लाह और उसके रसूल को छोड़ आया हूँ। वही उनके निगराँ हैं।"

हज़रत उमर *(रज़ि.)* यह जवाब सुनकर बोल पड़े, "ऐ अबू-बक्र! मैं आपसे कभी बाज़ी नहीं ले जा सकता।"

इमामत की ख़िदमत अंजाम दी

सन् 09 हिजरी में जबं मुसलमान हज के लिए जाने लगे और नबी *(सल्ल.)* किसी वजह से न जा सके तो हज का अमीर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को ही बनाया गया था।

दूसरे साल सन् 10 हिजरी में जब प्यारे नबी *(सल्ल.)* आख़िरी हज के लिए चले तो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी आप *(सल्ल.)* के साथ थे। इस सफ़र से वापस आकर कुछ दिनों के बाद प्यारे नबी *(सल्ल.)* बहुत सख़्त बीमार पड़ गए। बीमारी दिन-ब-दिन बढ़ती ही गई यहाँ तक कि नबी *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ाने के भी क़ाबिल न रहे तो आप *(सल्ल.)* ने अपनी जगह हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को ही मस्जिदे-नबवी का इमाम मुक़र्रर किया और एक वक़्त की नमाज़ ख़ुद भी उनके साथ अदा की।

इसी नमाज़ के बाद प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया था, "सबके एहसानों का बदला अदा कर चुका हूँ लेकिन अबू-बक्र ने जो एहसान किया है उसका बदला बाक़ी है। क़ियामत के दिन अल्लाह बदला देगा। ख़ुदा की क़सम! मुझे जितना फ़ायदा अबू-बक्र के माल से पहुँचा है उतना किसी और के माल से नहीं पहुँचा।"

समझ-बूझ

इसके बाद दो शम्बा (सोमवार) के दिन 12 रबीउल-अव्वल, सन् 11 हिजरी को प्यारे नबी *(सल्ल.)* को अल्लाह ने अपने पास बुला लिया। यह ख़बर सनुकर आप *(सल्ल.)* के प्यारे साथियों *(रज़ि.)* को इतना दुख हुआ कि वे सब बदहवास हो गए। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* जब मस्जिद के दरवाज़े पर पहुँचे तो देखा कि हज़रत उमर *(रज़ि.)* नंगी तलवार लिए एक-एक से कह रहे थे, "अगर किसी ने कहा कि नबी *(सल्ल.)* इस दुनिया से चले गए हैं तो मैं उसकी गर्दन उड़ा दूँगा।" हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने हज़रत उमर *(रज़ि.)* को समझाना चाहा मगर उन्होंने सुनकर नहीं दिया। आख़िरकार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने एक तरफ़ खड़े होकर तक़रीर शुरू कर दी। आप *(रज़ि.)* ने फ़रमाया, "जो लोग मुहम्मद *(सल्ल.)* की इबादत करते थे वे जान लें कि मुहम्मद *(सल्ल.)* वफ़ात पा चुके हैं और अगर वे अल्लाह की इबादत करते थे तो बेशक अल्लाह ज़िन्दा है और हमेशा ज़िन्दा रहेगा।" इसके बाद हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने क़ुरआन मजीद की यह आयत पढ़ी।

> "मुहम्मद *(सल्ल.)* सिर्फ़ एक रसूल हैं, जिनसे पहले बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं। तो क्या अगर वे वफ़ात पा जाएँ या क़त्ल कर दिए जाएँ तो तुम सच्चे दीन से उल्टे पाँव फिर जाओगे?"
>
> (क़ुरआन, 3 : 144)

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की तक़रीर और यह आयत सुनते ही सब ख़ामोश हो गए। हर तरफ़ सन्नाटा छा गया। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने भी तलवार म्यान में रख दी। उस वक़्त अगर अल्लाह ने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के दिल में यह बात न डाली होती तो न जाने क्या होता!

ख़लीफ़ा हुए

प्यारे नबी *(सल्ल.)* के दुनिया से रुख़्सत होते ही मुसलमानों में जो ज़्यादा समझदार लोग थे, उनको फ़िक्र पैदा हो गई कि जल्द ही किसी को नबी *(सल्ल.)* का ख़लीफ़ा (नायब) बना देना चाहिए। बहुत ही सोच-विचार के बाद सबने एक ज़बान होकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* का पहला ख़लीफ़ा मान लिया। बहुत ज़्यादा कहने-सुनने के बाद हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने यह मंसब क़बूल कर लिया।

दूसरे दिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने मस्जिद में एक तक़रीर की। देखिए तो आपने कितनी अच्छी-अच्छी बातें कही थीं—

"लोगो! मैं तुम्हारा ख़लीफ़ा बना दिया गया हूँ। मैं किसी भी तरह इस मंसब के क़ाबिल नहीं हूँ। लेकिन जब आप लोगों ने मुझे ख़लीफ़ा मान लिया है तो मैं उसी तरह हुकूमत का काम करने की कोशिश करूँगा जैसा कि अल्लाह ने हुक्म दिया है और प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने करके दिखाया है। अगर मैं सही रास्ते पर चलूँ तो मेरा कहना मानना और अगर ऐसा न करूँ तो मेरा हुक्म न मानना, बल्कि मुझे सीधा कर देना। याद रखो! जो क़ौम अल्लाह की राह में जिहाद करना छोड़ देती है उसे अल्लाह ज़लील और बेइज़्ज़त कर देता है। जिन लोगों में बुरे काम फैल जाते हैं उनको अल्लाह मुसीबत और तकलीफ़ में डाल देता है। अल्लाह हम सबपर रहम करे।"

तिजारत छोड़नी पड़ी

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ख़लीफ़ा होने के बाद भी अपने मामूल के मुताबिक़ एक दिन तिजारत का माल लेकर बाज़ार जा रहे थे। रास्ते में हज़रत उमर *(रज़ि.)* से मुलाक़ात हो गई। वे समझ गए और कहने लगे, "आपके सिर पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी आ गई है। अब तिजारत और ख़िलाफ़त दोनों काम साथ-साथ न चल सकेंगे।" हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने फ़रमाया, "फिर बाल-बच्चों का गुज़ारा किस तरह होगा?"

यह सुनकर हज़रत उमर *(रज़ि.)* चले गए। प्यारे साथियों से इसका ज़िक्र किया। सबका यह मशवरा हुआ कि ख़लीफ़ा का सालाना वज़ीफ़ा मुक़र्रर कर दिया जाए ताकि वे इत्मीनान के साथ ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी अदा कर सकें।

इस फ़ैसले की ख़बर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को दे दी गई। आपने उसे क़बूल कर लिया और उस दिन से तिजारत छोड़ दी।

पहला काम

अरब और शाम (सीरिया) की सरहद पर ईसाई हाकिम बहुत गड़बड़ मचाते रहते थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनसे निपटने के लिए एक लशकर तैयार किया था। उसका सरदार हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद *(रज़ि.)* को मुक़र्रर किया था जो कि सत्तरह साल के नौजवान थे। लशकर भेजने से पहले ही नबी *(सल्ल.)* अल्लाह को प्यारे हो गए। इसलिए वह लशकर जा न सका था। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने ख़लीफ़ा होते ही पहला काम यही किया कि हज़रत उसामा *(रज़ि.)* के लशकर की तैयारी शुरू करा दी। दूसरे सहाबा *(रज़ि.)* ने मशवरा दिया कि अभी यह लशकर रवाना न किया जाए। लेकिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने यह कहकर मशवरा मानने से इनकार कर दिया कि "जिस लशकर को हुज़ूर *(सल्ल.)* ने रवाना करने का इरादा फ़रमाया था उसे रोकनेवाला मैं कौन होता हूँ।" फिर दूसरा मशवरा यह आया कि हज़रत उसामा *(रज़ि.)* अभी नातजरिबेकार हैं, किसी दूसरे तजरिबेकार (अनुभवी) आदमी को सिपहसालार बनाकर भेजा जाए। लेकिन इसे भी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने मानने से इनकार कर दिया। कहा, "उसामा को प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सिपहसालार मुक़र्रर किया था। अबू-बक्र प्यारे नबी *(सल्ल.)* की बात को रद्द नहीं कर सकता।"

बहरहाल लशकर रवाना हुआ और चालीस दिन के बाद कामयाब होकर वापस आया। इस फ़तह से आस-पास के लोगों पर मुसलमानों का बहुत रोब बैठ गया।

सुनहरी नसीहतें

हज़रत उसामा *(रज़ि.)* के लशकर को रवाना करने से पहले हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने एक तक़रीर की। आप *(रज़ि.)* ने फ़रमाया कि लोगो सुनो! मैं तुम्हें कुछ नसीहतें करता हूँ। इन्हें याद रखना और इनपर अमल करना :

1. अमानत में ख़ियानत न करना।

2. जो वादा करना उसे पूरा करना।

3. चोरी न करना।

4. जो लड़ाई में मारे जाएँ उनके जिस्म के अंग न काटना। बच्चों, बूढ़ों और औरतों को क़त्ल करने से बचना।

5. खजूर के पेड़ों को न काटना, न जलाना।

6. दूसरे फलवाले पेड़ों को भी न काटना।

7. भेड़, बकरी, गाय या ऊँट को खाने के सिवा ज़ब्ह न करना।

8. जो लोग गिरजों में इबादत कर रहे हों उनको उनके हाल पर छोड़ देना।

9. कुछ लोग तुम्हारे सामने खाना पेश करेंगे, तुम अल्लाह का नाम लेकर खाना शुरू करना।

झूठे नबियों के ख़िलाफ़ जंग

प्यारे नबी *(सल्ल.)* के इस दुनिया से चले जाने के बाद ही कई लोगों ने नबी होने का झूठा दावा कर दिया। ये झूठे नबी अरब के कई इलाक़ों में पैदा हो गए। धीरे-धीरे बहुत-से लोग उनके माननेवाले भी बन गए। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने इधर भी फ़ौरी तौर पर तवज्जोह दी। हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद *(रज़ि.)* और दूसरे सरदारों की निगरानी में फ़ौजें भेजी गईं। बड़ी घमासान की लड़ाइयाँ हुईं। दो झूठे नबी तो मारे गए और दो जिनमें एक औरत भी थी, मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। कुछ दिनों बाद ये दोनों सच्चे दिल से मुसलमान हो गए।

ये थे झूठे नबी

1. **असवद अनसी :-** प्यारे नबी *(सल्ल.)* के आख़िरी ज़माने ही में इस आदमी ने नबी होने का दावा किया था। यह यमन का रहनेवाला था। अपने क़बीले का सरदार भी था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने ख़ुद मुआज़-बिन-जबल *(रज़ि.)* को फ़ौज देकर इसे सज़ा देने के लिए भेजा था। नबी *(सल्ल.)* की वफ़ात से एक दो रोज़ पहले ही इसको क़त्ल कर दिया गया था।

2. **मुसैलमा कज़्ज़ाब :-** यह क़बीला हनीफ़ा का आदमी था। इसने भी प्यारे नबी *(सल्ल.)* के आख़िरी ज़माने में ही नबी होने का झूठा दावा किया था। बहुत समझाया-बुझाया गया मगर वह न माना और बराबर फ़साद फैलाता रहा। आख़िरकार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने इसके ख़िलाफ़ लशकर भेजा। यमामा के मक़ाम पर ज़बरदस्त जंग हुई। इसी में वह मारा गया। इधर मुसलमानों की अच्छी-ख़ासी तादाद शहीद हुई जिनमें सत्तर क़ुरआन मजीद के हाफ़िज़ भी थे।

3. तलीहा-बिन-ख़ुवैलद असदी :- यह बनी-असद का सरदार था और नज्द के इलाक़े में रहता था। इसने प्यारे नबी *(सल्ल.)* की वफ़ात की ख़बर सुनकर नबी होने का झूठा दावा पेश किया था। हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* की फ़ौज से इसका मुक़ाबला हुआ। इसकी हार हुई और शाम (सीरिया) की तरफ़ भाग खड़ा हुआ। फिर कुछ दिनों बाद मुसलमान हो गया और हज़रत उमर *(रज़ि.)* की ख़िलाफ़त के ज़माने में मुसलमानों की तरफ़ से बहुत बहादुरी से जंगों में लड़ता रहा।

4. सजाह-बिन्ते-हारिसा :- यह औरत तमीम क़बीले से ताल्लुक़ रखती थी। इसने भी नबी होने का झूठा दावा किया था और ताक़त हासिल करने के लिए मुसैलमा कज़्ज़ाब से शादी कर ली थी। कुछ दिनों बाद इसने तौबा कर ली और हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* के ज़माने में मुसलमान हो गई।

बाग़ियों का ख़ातिमा

अरब के बहुत-से सरदार सिर्फ़ फ़ायदे और दिखाने के लिए मुसलमान हो गए थे। सच्चे दिल से इस्लाम क़बूल नहीं किया था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* की आँख बन्द होते ही उन्होंने गड़बड़ मचानी शुरू कर दी। इनमें सबसे आगे-आगे बहरैन में नोमान-बिन-मुंज़िर और उमान में लक़ीत-बिन-मालिक थे। कनदा के इलाक़े में बहुत से सरदारों ने बादशाह होने का एलान कर दिया था। सिर्फ़ इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने तो इस्लाम से भी अपना नाता तोड़ लिया था। ये तो बड़ी ख़तरनाक बात थी। यह फ़साद धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। इसी लिए हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* ने झूठे नबियों से निपटकर सबसे पहले इसी तरफ़ ध्यान दिया। आपने अला-बिन-हज़रमी *(रज़ि.)* को बहरैन की तरफ़, हुज़ैफ़ा-बिन-मुहसन *(रज़ि.)* को उमान की तरफ़ और ज़ियाद-बिन-लबीद *(रज़ि.)* को कनदा की तरफ़ फ़ौजें लेकर रवाना कर दिया। उन्होंने देखते ही देखते इन सब फ़सादियों का काम तमाम कर दिया।

इस तरह मुल्क फ़ितना-फ़साद से महफ़ूज़ हो गया।

ज़कात देने से इनकार करनेवालों से जंग

इसी तरह कुछ मुसलमान ऐसे भी खड़े हो गए जिन्होंने ज़कात देने से मना कर दिया, जबकि ज़कात देना अल्लाह का मुक़र्रर किया हुआ फ़र्ज़ और ग़रीब मुसलमानों का हक़ है। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उनकी तरफ़ भी तवज्जोह फ़रमाई। बहुत समझाया-बुझाया लेकिन जब वे किसी तरह न माने तो आप *(रज़ि.)* ने उनके ख़िलाफ़ भी जंग का एलान कर दिया।

फ़सादी यह समझ रहे थे कि इस्लामी हुकूमत में इस वक़्त इतनी ताक़त नहीं है कि वह उनसे मुक़ाबले के लिए तैयार हो जाए। लेकिन जब हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अल्लाह के नाम पर फ़ौज इकट्ठा करके फ़सादियों के ख़िलाफ़ रवाना कर दी तो उनके होश उड़ गए। एक-आध जगह मुक़ाबला भी हुआ। फ़सादी मैदान में ठहर न सके और भाग खड़े हुए।

इस तरह लगभग एक साल की लगातार कोशिशों से इस्लामी हुकूमत का रौब सब पर बैठ गया। फ़ितना-फ़साद जड़ से ख़त्म हो गया और मुल्कवालों ने चैन का साँस लिया।

क़ुरआन मजीद जमा कराना

ये जो मुख़्तलिफ़ लड़ाइयाँ हुई उनमें क़ुरआन मजीद के बहुत-से हाफ़िज़ शहीद हो गए थे। ख़ास तौर पर जब मुसैलमा कज़्ज़ाब से मुक़ाबला हुआ तो उसमें सत्तर हाफ़िज़ अल्लाह को प्यारे हो गए। यह देखकर हज़रत उमर *(रज़ि.)* को बड़ी चिन्ता हुई कि अगर इसी तरह क़ुरआन के हाफ़िज़ शहीद होते रहे तो कहीं ऐसा न हो कि क़ुरआन का कुछ हिस्सा नष्ट हो जाए। इसलिए हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने क़ुरआन मजीद को जमा कराने की राय हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के सामने रखी और उनको इस काम पर आमादा कर लिया। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने हज़रत ज़ैद-बिन-साबित *(रज़ि.)* को इस काम पर लगा दिया। आयतों और सूरतों की तरतीब तो ख़ुद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* अल्लाह की मंशा के मुताबिक़ फ़रमा गए थे। अब तो सिर्फ़ उन खजूर की शाख़ों, हड्डियों, पत्थरों की तख़्तियों, चमड़े और काग़ज़ के टुकड़ों को जमा करके एक किताब की सूरत में लिखना रह गया था। इस काम को हज़रत ज़ैद *(रज़ि.)* ने बड़ी मेहनत से अंजाम दिया। इस तरह सरकारी तौर पर क़ुरआन मजीद को एक किताब की शक्ल में तरतीब दे दिया गया।

यह हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का बहुत बड़ा कारनामा समझा जाता है। सच पूछो तो क़ुरआन मजीद को जमा करानेवाले आप ही थे, बाद में तो इसकी नक़्लें कराके उसे आम किया गया है।

मुल्क के बाहर के फ़ितने

ख़लीफ़ा होते ही हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बड़ी परेशानी में घिर गए थे। एक तरफ़ तो झूठे नबी उठ खड़े हुए थे। दूसरी तरफ़ उन लोगों ने जो सच्चे दिल से मुसलमान नहीं हुए थे, इस्लाम से अपना ताल्लुक़ ख़त्म करने का एलान कर दिया और कुछ मुसलमानों ने ज़कात देने से भी मना कर दिया था। ये सब कुछ मुल्क से बाहर की दो बड़ी ताक़तों के इशारे पर हो रहा था। उनमें से एक तो ईरानी थे, दूसरे ईसाई। उनकी हुकूमतों की सरहदें अरब से मिली हुई थीं। इसलिए उनको अरब के अन्दर गड़बड़ी फैलाने की सहूलत हासिल थी। ये सब इस्लाम के खुले दुश्मन थे। अरब में नई-नई इस्लामी हुकूमत क़ायम हुई थी और जिस तेज़ी के साथ फैल रही थी उसमें उन्हें अपनी मौत नज़र आ रही थी। इसी लिए वे मुल्क के अन्दर बद-अमनी और फ़साद फैला रहे थे।

मुसलमानों के साथ तो अल्लाह की मदद थी जिसकी वजह से दुश्मनों को हर जगह मुँह की खानी पड़ी। मुल्क के अन्दर दुश्मनों के जो दल्लाल थे क़रीब-क़रीब उन सबका सफ़ाया हो गया। अब हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उन बड़ी ताक़तों पर नज़र डाली और उनको मज़ा चखाने के लिए तरकीबें सोचने लगे।

ईरान पर हमला

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* कोई भी काम अपने साथियों से मशवरा किए बग़ैर नहीं करते थे। इसलिए आपने साथियों से मशवरा किया कि ईरानियों और रूमियों के साथ क्या बरताव करना चाहिए। सबकी यही राय हुई कि उनपर हमला करके सबक़ सिखाना चाहिए।

सबसे पहले हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद *(रज़ि.)* को फ़ौज का सरदार बनाकर एक बड़ी फ़ौज के साथ ईरान की तरफ़ भेजा गया। हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* बड़े बहादुर थे। सब उनको अल्लाह की तलवार कहते थे। क़दम-क़दम पर उन्हें ईरानी फ़ौजों से मुक़ाबला करना पड़ा। अल्लाह की मदद से हर जगह उनको कामयाबी हासिल हुई। अब तो ईरानी हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* के नाम से ही डरने और लड़ाई से कतराने लगे। वे जिधर निकल जाते, उस इलाक़े को फ़तह करके वापस आते। इस तरह हियरा, अनबार, ऐनुत्तमर, दूमतुल जन्दल, फ़राज़ और ऐसे ही बहुत-से इलाक़े मुसलमानों के क़ब्ज़े में आ गए। ईरानी सल्तनत की कमर टूटकर रह गई।

शाम (सीरिया) पर हमला

रूमी सल्तनत भी इस्लामी हुकूमत को मिटा देने की बराबर कोशिश कर रही थी। वह तरह-तरह की साज़िशें किया करती थी। ईरान की जंगों में कामयाबी से मुसलमानों की हिम्मत बहुत बढ़ गई थी। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने मौक़ा अच्छा समझकर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। आप *(रज़ि.)* ने शाम पर कई तरफ़ से हमला करने की स्कीम बनाई। हज़रत अबू-उबैदा *(रज़ि.)*, हज़रत यज़ीद-बिन-अबू-सुफ़ियान *(रज़ि.)*, हज़रत शुरहबील-बिन-हसना *(रज़ि.)* और हज़रत अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* जैसे मशहूर और तजरिबेकार (अनुभवी) सरदारों की सरदारी में फ़ौजें रवाना कर दीं। रूमी फ़ौजें भी तैयार थीं। रूमी फ़ौजें तादाद में मुसलमानों से बहुत ज़्यादा थीं तब भी उन्हें हर लड़ाई में मुँह की खानी पड़ी। कुछ दिनों के बाद हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* भी ईरानी इलाक़े से निपटकर उनके साथ शामिल हो गए। अब तो शामी फ़ौजों के छक्के छूट गए।

देखते ही देखते बुसरा, फ़हल और अजनादैन पर मुसलमानों का क़ब्ज़ा हो गया। इस्लामी फ़ौजों ने आगे बढ़कर दमिश्क़ को अपने घेरे में ले लिया। अभी लड़ाई शुरू ही हुई थी कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* की वफ़ात की ख़बर इस्लामी फ़ौज को पहुँच गई। इसलिए लड़ाई में कुछ कमी आ गई।

बीमारी

सन् 13 हिजरी का जाड़े का मौसम था और जुमादुल-उख़रा की सात तारीख़ थी। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* ने ग़ुस्ल किया। होनेवाली बात, आपको बुख़ार आ गया। बुख़ार दिन-पर-दिन बढ़ता ही रहा। आप बहुत कमज़ोर हो जाए। यहाँ तक कि चलना-फिरना दूभर हो गया। आख़िरकार हज़रत उमर *(रज़ि.)* से फ़रमाया कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* की मस्जिद में पाँचों वक़्त की नमाज़ वे पढ़ा दिया करें। बीमारी का सिलसिला बढ़ता ही गया। जब कोई पूछता कि आपने किसी हकीम को दिखाया? आप यही जवाब देते, "हाँ! मेरा हकीम (अल्लाह) मुझे देख रहा है और मैं मुत्मइन हूँ।"

जब आपको अन्दाज़ा हो गया कि अब मेरा आख़िरी वक़्त क़रीब है तो आपने अपने प्यारे साथियों को बुलाया और अपनी जगह पर ख़िलाफ़त के लिए हज़रत उमर *(रज़ि.)* का नाम पेश किया। सबने आपकी राय को मंज़ूर कर लिया।

फिर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने मदीनावालों को जमा करके उनसे फ़रमाया, "मेरा अब आख़िरी वक़्त है। मैंने अपने किसी रिश्तेदार को अपनी जगह पर ख़लीफ़ा नहीं बनाया है। बल्कि उसको चुना है, जो तुम में सबसे अच्छा है यानी उमर-इब्ने-ख़त्ताब को। तुम्हें मंज़ूर है?" सबने आप *(रज़ि.)* के फ़ैसले को मान लिया। फिर आपने हज़रत उमर *(रज़ि.)* को बुलाकर उन्हें अच्छी-अच्छी नसीहतें कीं जो आगे चलकर उनके बहुत काम आईं और फिर उनको रुख़सत कर दिया।

वसीयत

मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि मौत से पहले अपनी छोड़ी हुई चीज़ों के बारे में अपने वारिसों को हिदायत कर दे।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने भी ख़िलाफ़त का इन्तिज़ाम करने बाद अपनी प्यारी बेटी हज़रत आइशा *(रज़ि.)* को बुलाया। अपने पास बिठाकर बड़ी मुहब्बत से फ़रमाया, "प्यारी बेटी! अब मेरा आख़िरी वक़्त आ पहुँचा है। मेरे बाद अपने भाइयों और बहनों का हक़ अदा करती रहना। मेरे ऊपर बैतुलमाल (सरकारी ख़ज़ाने) का जो क़र्ज़ है, मेरा फ़ुलाँ बाग़ बेचकर उसे ज़रूर अदा कर देना। यह लौंडी, दोनों ऊँटनियाँ और यह चादर जो मेरे जिस्म पर है, सब सरकारी हैं। इन्हें मेरी मौत के फ़ौरन बाद ही उमर इब्ने-ख़त्ताब *(रज़ि.)* के पास भेज देना।"

इसके बाद हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने ग़ुलाम को बुलाया और उससे कहा, "ज़रा हिसाब लगाकर बताओ तो सही कि ख़लीफ़ा होने के बाद से अब तक मैंने बैतुलमाल से कितनी तनख़ाह ली है।" ग़ुलाम ने हिसाब लगाकर बता दिया। आपने हुक्म दिया, "यह रक़म मेरा घर बेचकर बैतुलमाल में वापस कर दी जाए।"

आपके इन्तिक़ाल के बाद ऐसा ही किया गया। जिस वक़्त सरकारी ग़ुलाम, ऊँटनियाँ, चादर और तनख़ाह की कुल रक़म हज़रत उमर *(रज़ि.)* के पास पहुँची तो उसे देखकर आप फूट-फूटकर रोने लगे। फिर बोले, "अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने मुझे बड़े इमतिहान में डाल दिया है। भला कौन उनकी तरह कर सकेगा.....!"

वफ़ात

23, जुमादुल-उख़रा, सन् 13 हिजरी की बात है। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने बिस्तर पर लेटे-लेटे पूछा, "आज कौन-सा दिन है?" जवाब दिया गया, "आज पीर (सोमवार) का दिन है।" आपने फिर पूछा, "अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* दुनिया से किस दिन तशरीफ़ ले गए थे?" कहा गया, "पीर (सोमवार) के दिन।" आपने आसमान की तरफ़ देखा और फ़रमाया, "मेरी ख़ाहिश है कि मैं भी आज ही रात तक इस दुनिया से रुख़सत हो जाऊँ।" फिर आपने सवाल किया, "नबी *(सल्ल.)* को कितने कपड़ों में कफ़नाया गया था?" हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने बताया कि तीन कपड़ों में। आपने फ़रमाया, "दो कपड़े मेरे जिस्म पर हैं उनको धोकर साफ़ कर लेना और एक बाज़ार से मंगा लेना।" हज़रत आइशा *(रज़ि.)* यह सुनकर रोने लगीं और बोलीं, "हम तीनों कपड़े नए मंगा लेंगे।" आपने फ़रमाया, "बेटी! नए कपड़े के ज़्यादा हक़दार मुर्दे नहीं बल्कि ज़िन्दा लोग हैं।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की दुआ क़बूल हो गई। उसी दिन मग़रिब और इशा के बीच आप *(रज़ि.)* का इन्तिक़ाल हो गया— "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।"

रातों-रात हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* को कफ़ना-दफ़ना दिया गया। आपकी बीवी हज़रत अस्मा-बिन्ते-उमैस *(रज़ि.)* ने आपको ग़ुस्ल दिया। हज़रत उमर फ़ारूक़ *(रज़ि.)* ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई और प्यारे नबी *(सल्ल.)* की दाहिनी तरफ़ दफ़न किए गए।

देखा आपने! हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* से कितनी मुहब्बत थी। मरने के बाद भी आपको नबी *(सल्ल.)* के पास ही जगह मिली।

अल्लाह ने सुन ली

यह तो आप पढ़ चुके हैं कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* से बहुत मुहब्बत थी। आप हर मामले में प्यारे रसूल *(सल्ल.)* की नक़ल करना और हर काम प्यारे नबी *(सल्ल.)* ही की तरह करना चाहते थे। आपकी दिली तमन्ना थी कि आपकी उम्र भी प्यारे नबी *(सल्ल.)* की उम्र के बराबर हो। अल्लाह तआला ने भी आपकी यह तमन्ना पूरी कर दी।

★ आप *(रज़ि.)* की उम्र तिरसठ साल की थी और इतनी ही उम्र प्यारे नबी *(सल्ल.)* की भी थी।

★ आप *(रज़ि.)* ने सोमवार के दिन इन्तिक़ाल फ़रमाया। प्यारे नबी *(सल्ल.)* भी इसी दिन दुनिया से तशरीफ़ ले गए थे।

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* ने सिर्फ़ सवा दो साल ख़िलाफ़त का काम अंजाम दिया।

आप *(रज़ि.)* कैसे थे?

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* दुबले-पतले थे। आपका रंग गोरा था। गालों पर गोश्त कम था। चेहरा खिला हुआ रहता था। आँखें कुछ-कुछ अन्दर धँसी हुई थीं। माथा चौड़ा था। सिर के अगले हिस्से में बाल न थे। बालों में मेंहदी लगाते थे। पेट कुछ निकला हुआ था। झुककर चलते थे जिसकी वजह से तहबन्द नीचे खिसक आता था। अँगूठी पहना करते थे।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बहुत ज़्यादा सख़ी (दानी) थे। ग़रीबों, मिसकीनों और नादारों की हर तरह मदद करते थे। दिल के बहुत नर्म थे। क़ुरआन मजीद पढ़ते तो फूट-फूटकर रोते थे। बड़े हिम्मतवाले और बहादुर थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* से बहुत मुहब्बत करते थे। अल्लाह से बहुत ज़्यादा डरते थे। बहुत ही परहेज़गार और इबादत गुज़ार थे। रातों को इबादत करते और ज़्यादातर दिन में रोज़ा रखते थे। बहुत सादा ज़िन्दगी गुज़ारते थे। मेहमानों का बहुत ख़याल रखते थे। अल्लाह के बन्दों की ख़िदमत के लिए हर वक़्त तैयार रहते थे। ग़रज़ कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* की पूरी-पूरी नक़्ल करने की कोशिश करते थे।

आपकी चार बीवियों से दस बेटे और बेटियाँ थीं। आपकी एक बेटी हज़रत आइशा (रज़ि.) हैं जो प्यारे नबी *(सल्ल.)* की बीवी और तमाम मुसलमानों की माँ हैं। आपके बेटों ने आगे चलकर इस्लाम के लिए बड़ी ख़िदमात अंजाम दीं।

अल्लाह का डर

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* रात-रात भर नमाज़ें पढ़ते और दिन में ज़्यादा तर रोज़े रखते थे और कोई नेक काम ऐसा नहीं होता था जिसे करने की आप कोशिश न करते हों। इसके बावजूद अल्लाह के ख़ौफ़ और आख़िरत के डर से हमेशा काँपते रहते थे और फूट-फूटकर रोते थे।

एक बार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का गुज़र एक बाग़ के पास से हुआ। पेड़ों पर चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। आप उन्हें हसरत भरी निगाहों से देखने लगे और कहने लगे, "ऐ चिड़ियो! तुम बड़ी ख़ुशक़िस्मत हो, इत्मीनान से चरती-चुगती हो। जिस पेड़ की छाया में चाहती हो बैठती हो। तुम्हारे लिए क़ियामत के दिन कोई हिसाब-किताब नहीं, कोई पूछ-ताछ नहीं। काश, मैं भी तुम्हारी तरह होता!"

देखा आपने, क़ियामत के दिन के हिसाब-किताब से हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* कितना डरते थे।

ख़र्च में एहतियात

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बैतुलमाल की रक़म को मुसलमानों की अमानत समझते थे और बहुत समझ-बूझकर ख़र्च करते थे।

एक दिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की बीवी ने आपसे मिठाई लाने की फ़रमाइश की ताकि कोई मीठी चीज़ पकाई जा सके। आपने जवाब दिया, "तुम जानती हो कि वज़ीफ़े की रक़म में इतनी गुंजाइश नहीं है कि मिठाई मँगा सकूँ, रहने दो।" बीवी ख़ामोश होकर चली गई और रोज़ाना के ख़र्च में से थोड़ा-थोड़ा बचाती रहीं। यहाँ तक कि एक दिन मिठाई मँगाकर मीठी चीज़ पका ली। जब वह चीज़ हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के सामने आई तो आपने हैरत के साथ पूछा, "यह कहाँ से आई?" बीवी ने सारा हाल बता दिया। आपने फ़रमाया, "रोज़ाना के ख़र्च में से तुम इतना बचाती रहीं और कोई कमी महसूस नहीं हुई! इससे मालूम हुआ कि इतनी रक़म मुझे ज़्यादा मिलती है।" यह कहकर आपने अपने वज़ीफ़े में से उतनी रक़म कम करा दी।

देखा आपने कि हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बैतुलमाल का पैसा ख़र्च करने में कितनी एहतियात करते थे।

हराम से परहेज़

एक बार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का ग़ुलाम कुछ मिठाई लाया और आप *(रज़ि.)* के सामने पेश की। आपने उसे खाया और ग़ुलाम से कहा, "मिठाई बहुत मज़ेदार है, कहाँ से लाए हो?" ग़ुलाम बोला, "जब मैंने इस्लाम क़बूल नहीं किया था उस वक़्त एक आदमी की फ़ाल खोली थी। फ़ाल खोलना तो जानता न था, सिर्फ़ उसे धोखा दे दिया था। आज वह आदमी मिला, उसने उस फ़ाल के बदले में यह मिठाई दी थी जिसे आपने खाया।"

यह सुनते ही आपके चेहरे का रंग बदल गया। फ़ौरन ही हलक़ में उँगली डालकर उल्टी कर दी। और फ़रमाया, "जो जिस्म हराम खाने से परवरिश पाता है उसका ठिकाना जहन्नम है।"

देखा आपने, हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* हराम चीज़ों से कितना बचा करते थे।

ग़लती का एहसास

मुस्लिम की यह पहचान है कि जानते-बूझते वह कोई ऐसा काम नहीं करता जिससे अल्लाह नाराज़ हो। ठीक इसी तरह वह अपनी ज़बान से भी कोई ऐसी बात नहीं निकालता जिससे किसी के दिल को दुख पहुँचे। अगर धोखे से कभी ऐसी कोई बात कह देता है तो बाद में वह माफ़ी माँग लेता है।

एक बार हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* और रबीआ-बिन-जाफ़र *(रज़ि.)* में किसी वजह से कोई सख़्त बात-चीत हो गई। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* ने कोई ऐसी बात कह दी जो हज़रत रबीआ *(रज़ि.)* को बहुत नागवार हुई। जब ग़ुस्सा उतर गया तो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उनसे कहा, "रबीआ *(रज़ि.)* ! तुम भी मुझे ऐसी ही सख़्त बात कह दो।" यह कहकर आप फूट-फूटकर रोने लगे। यह बात प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास पहुँची। आप *(सल्ल.)* ने पूरा हाल सुना और फ़रमाया, "रबीआ! तुम कोई सख़्त बात न कहो। सिर्फ़ इतना कह दो कि ऐ अबू-बक्र *(रज़ि.)*! अल्लाह तुम्हें माफ़ कर दे।" जब हज़रत रबीआ *(रज़ि.)* ने यह जुमला कहा तब हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को सुकून हुआ और उनके आँसू थमे।

देखा आपने, हज़रत अबू बक्र *(रज़ि.)* अपनी ज़बान का कितना ख़याल रखते और अल्लाह से कितना डरते थे!

साथियों का ख़याल रखना

एक बार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* और हज़रत उमर *(रज़ि.)* में किसी बात पर तकरार हो गई। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की ज़बान से एक नागवार जुमला निकल गया जिसकी वजह से हज़रत उमर *(रज़ि.)* को बहुत तकलीफ़ पहुँची। यह देखकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बहुत शर्मिन्दा हुए। आपने फ़ौरन ही हज़रत उमर *(रज़ि.)* से अपनी ग़लती की माफ़ी माँगी। लेकिन उन्होंने माफ़ करने से इनकार कर दिया। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बहुत ज़्यादा परेशान हुए और सीधे प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास पहुँचे। नबी *(सल्ल.)* को सारी बात बताई। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनको तसल्ली देते हुए तीन बार फ़रमाया, "अबू-बक्र! अल्लाह तुम्हें ज़रूर माफ़ कर देगा।"

उधर हज़रत उमर *(रज़ि.)* को अपने मना करने पर बहुत पछतावा हुआ। वे सीधे हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर पहुँचे। वहाँ उनको न पाकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास गए। नबी *(सल्ल.)* ने उनको देखा तो ग़ुस्से से चेहरे का रंग बदल गया। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* यह देखकर डर गए और घुटनों के बल बैठकर ख़ुशामद करने लगे, "ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*! सारा क़ुसूर मेरा था, उमर की कोई ग़लती न थी।"

देखा, हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* अपने साथियों का कितना ख़याल रखते थे!

आप *(रज़ि.)* घमण्डी न थे

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* बहुत ही सादगी पसन्द थे। उनकी ज़िन्दगी में ग़ुरूर व घमण्ड की जगह बिल्कुल न थी। आप छोटे-से-छोटा काम करने में हिचकिचाते नहीं थे।

जब कभी आप *(रज़ि.)* कोई फ़ौज कहीं रवाना फ़रमाते तो बुढ़ापे की हालत में और ख़लीफ़ा होने के बावजूद कुछ दूर तक फ़ौज के अफ़सर के साथ पैदल चलते। अगर कोई अफ़सर ताज़ीम (आदर-सम्मान) के ख़याल से घोड़े पर से उतरना चाहता तो आप उसे रोक देते और कहते, "इसमें क्या हर्ज है अगर मैं थोड़ी दूर तक अल्लाह की राह में अपने पैर गर्द आलूद कर लूँ?" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "जो पाँव अल्लाह की राह में मिट्टी से मैले हो जाते हैं, अल्लाह उनपर जहन्नम की आग हराम कर देता है।"

ख़ाकसारी और आजिज़ी

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* आजिज़ी और ख़ाकसारी को बहुत पसन्द करते थे। ग़ुरूर व घमण्ड तो आपको छूकर भी नहीं गया था। लोग आपको अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का नायब समझकर खड़े हो जाया करते थे तो आपको इससे तकलीफ़ होती थी। आप लोगों से फ़रमाते, "मुझे लोगों ने बहुत बढ़ा दिया है।"

अगर कोई हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की तारीफ़ करता तो कहते, "ऐ अल्लाह! तू मेरा हाल मुझसे ज़्यादा जानता है और मैं अपने बारे में इन लोगों से ज़्यादा जानता हूँ। ऐ अल्लाह! इनके अच्छे गुमान से मुझे बेहतर साबित कर, मेरे गुनाहों को माफ़ कर दे और लोगों की बेजा तारीफ़ का मुझसे बदला न लेना।"

अल्लाह की राह में ख़र्च करना

इस्लाम क़बूल करने से पहले हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* बहुत मालदार आदमी थे। आपके पास चालीस हज़ार दिरहम थे। लेकिन इस्लाम लाने के बाद आपने यह सारी दौलत अल्लाह की राह में ख़र्च कर दी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* फ़रमाया करते थे, "कोई माल मेरे लिए इतना फ़ायदेमन्द नहीं हुआ जितना कि अबू-बक्र का माल।" इसके अलावा भी एक बार आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "जान व माल के लिहाज़ से मुझपर अबू-बक्र से ज़्यादा किसी का एहसान नहीं।"

यह बात सुननी थी कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* की आँखों से आँसू जारी हो गए और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* मेरी जान और माल सब कुछ आप *(सल्ल.)* ही के लिए है।"

अब दूध कौन दूहेगा

जिस तरह प्यारे नबी *(सल्ल.)* हर एक के काम आया करते थे उसी तरह हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी दूसरों की मदद करने का मौक़ा तलाश करते रहते थे।

मदीना में एक यतीम लड़की रहती थी। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ख़लीफ़ा होने से पहले उसकी बकरियों का दूध दूहा करते थे। जब आप ख़लीफ़ा हो गए तो वह लड़की दौड़ी-दौड़ी आपके पास आई और उदास मन से कहने लगी, "अब तो आप सबके ख़लीफ़ा हो गए हैं। अब हमारी बकरियाँ कौन दूहा करेगा?"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "बेटी ख़लीफ़ा होने से क्या होता है। ख़लीफ़ा तो क़ौम का ख़ादिम होता है। तुम्हारी बकरियाँ मैं ही दूहा करूँगा।"

यह सुनकर वह लड़की बहुत ख़ुश हो गई और अपने घर वापस चली गई। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ख़लीफ़ा होने के बाद भी उसकी बकरियाँ दूहते रहे।

ख़ाब की ताबीर बयान करना

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* को ख़ाब की ताबीर बताने में बड़ी महारत हासिल थी। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* भी कभी-कभी अपना ख़ाब बयान करके उनसे उसकी ताबीर पूछा करते थे।

एक बार प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ख़ाब में देखा कि कुछ काली भेड़ों में बहुत सारी सफ़ेद भेड़ें शामिल हो गईं। आप *(सल्ल.)* ने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* से उसकी ताबीर मालूम की तो उन्होंने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ! काली भेड़ें तो अरब के लोग हैं जो पहले इस्लाम क़बूल करेंगे। इसके बाद अरब से बाहर के लोग जो सफ़ेद भेड़ों की सूरत में हैं, कसरत से इस्लाम क़बूल करेंगे।"

यह सुनकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "सच कहते हो, अल्लाह के फ़रिश्ते ने भी यही ताबीर की है।"

दूसरों की ख़िदमत

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* दूसरों की ख़िदमत करने के मौक़े तलाश किया करते थे। दूसरों के काम करके आपको बहुत ख़ुशी हासिल होती थी।

मदीना के पास ही एक झोंपड़ी में एक बुढ़िया रहती थी। वह अन्धी थी और उसके आगे-पीछे कोई न था। हज़रत उमर *(रज़ि.)* रोज़ाना सुबह तड़के उसकी झोंपड़ी में जाकर उसका सारा काम-काज कर आते थे।

कुछ दिनों बाद आपने ऐसा महसूस किया कि उनसे भी पहले कोई आदमी आकर काम कर जाता है। हज़रत उमर *(रज़ि.)* को बड़ी फ़िक्र पैदा हुई कि आख़िर वह कौन है जो ऐसा करता है?

एक दिन कुछ रात रहे हज़रत उमर *(रज़ि.)* आए और छिपकर एक तरफ़ खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद देखते हैं कि एक आदमी बुढ़िया की झोंपड़ी में आया और काम-काज निपटाने में लग गया। काम निपटाकर जब जाने लगा और उनके पास से गुज़रा तो हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने पहचान लिया कि ये तो मुसलमानों के सरदार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* हैं।

देखा आपने! ख़लीफ़ा होने के साथ दूसरों की ख़िदमत करने और नेक कामों की तलाश में भी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* रहा करते थे। ज़्यादा से ज़्यादा नेकी कमाने का आपको बहुत शौक़ था।

मेहमान-नवाज़ी

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* मेहमानों की ख़ातिरदारी बहुत ज़्यादा करते थे। एक बार कुछ लोग जो कि असहाबे-सुफ़्फ़ा में से थे आपके यहाँ मेहमान थे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने बेटे हज़रत अब्दुर्रहमान *(रज़ि.)* को ताकीद कर दी, "मैं प्यारे नबी *(सल्ल.)* के यहाँ ज़रूरी काम से जा रहा हूँ। जब मेहमान घर आ जाएँ तो उनको खाना खिला देना और मेहमान नवाज़ी ठीक से करना।"

जब मेहमान आ गए तो हज़रत अब्दुर्रहमान *(रज़ि.)* ने खाना पेश किया मगर मेहमानों ने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की ग़ैर मौजूदगी में खाना पसन्द न किया और उनका इन्तिज़ार करने लगे। इत्तिफ़ाक़ से आप बहुत देर से घर आए। जब मालूम हुआ कि मेहमानों ने अभी तक खाना नहीं खाया है तो आप अपने बेटे पर बहुत नाराज़ हुए। बहुत डाँटा-डपटा। जब मेहमानों ने उनकी तरफ़ से सफ़ाई पेश की कि खाना आया था मगर हमने ख़ुद ही आपके बग़ैर खाना पसन्द नहीं किया तब हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का ग़ुस्सा ठंडा हुआ।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को इतना भी गवारा न था कि मेहमानों को खाने में देर हो जिसकी वजह से उनको तकलीफ़ उठानी पड़े।

कोई नेक काम न छोड़ते

आख़िरत के हिसाब-किताब से हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का दिल हमेशा काँपता रहता था। इसी लिए हर वक़्त कोई न कोई नेकी और सवाब का काम करनें की फ़िक्र में लगे रहते थे।

एक दिन प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अपने सहाबा *(रज़ि.)* से पूछा, "आज तुममें से रोज़े से कौन-कौन है?" सब चुप रहे। सिर्फ़ हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अर्ज़ किया कि "मैं हूँ।" फिर आप *(सल्ल.)* ने सवाल किया "आज किसने किसी जनाज़े की नमाज़ पढ़ी?" फिर सब ख़ामोश रहे। आख़िरकार हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अर्ज़ किया, "मैंने।" इसी तरह फिर पूछा, "आज किसी ने तुममें से किसी ग़रीब को खाना खिलाया है और किसी ने किसी मरीज़ की अयादत की है?" इन सवालों के जवाब में तमाम सहाबा *(रज़ि.)* ख़ामोश रहे। सिर्फ़ हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ही ने "हाँ" में जवाब दिया। आख़िर में प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने इरशाद फ़रमाया, "जिसने एक दिन में इतनी नेकियाँ जमा की हों वह यक़ीनन जन्नत में जाएगा।"

इतनी ज़्यादा थी आप *(रज़ि.)* को नेकियाँ ज़मा करने की फ़िक्र। अल्लाह हमें भी ज़्यादा से ज़्यादा नेकियाँ जमा करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन!

सबसे पहले

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ी *(रज़ि.)* हर नेक काम में पहल करने की कोशिश किया करते थे। यही एक सच्चे और पक्के मुसलमान की पहचान है।

आपने :

- मर्दों में सबसे पहले इस्लाम क़बूल किया।
- सबसे पहले क़ुरआन मजीद का नाम मुसहफ़ रखा।
- नबी करीम *(सल्ल.)* के बाद सबसे पहले क़ुरआन मजीद जमा किया।
- सबसे पहले इस्लाम के दुश्मनों से जिहाद किया।
- सबसे पहले बैतुलमाल क़ायम किया।
- सहाबा किराम (रज़ि.) में सबसे पहले इज्तिहाद किया।

आप :

- सबसे पहले ख़लीफ़ा-ए-राशिद हैं।
- सबसे पहले वे ख़लीफ़ा हैं जिनको अपने वालिद की ज़िन्दगी में ख़िलाफ़त मिली।
- हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की उम्मत में सबसे पहले जन्नत में दाख़िल होंगे।
- इस्लाम में सबसे पहले 'अतीक़' का लक़ब हासिल करनेवाले हैं।

अच्छी और प्यारी नसीहतें

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने कितनी अच्छी-अच्छी नसीहतें की हैं। इनको ग़ौर से पढ़िए और अमल करने की पूरी कोशिश कीजिए।

- जो अल्लाह के दोस्त (सिद्दीक़) होते हैं वे अपना सारा माल अल्लाह की राह में सदक़ा कर देते हैं।
- दूसरों की शिकायत न करो तो तुमको सुकून और इत्मीनान नसीब होगा।
- बुरे काम करनेवाले का साथ देना खुद बुरा काम करना है।
- अच्छे अमल बुराई से बचाते हैं।
- जो गुनाह तुमसे हुए हैं उनके बदले में नेकियाँ करके अपने आपको अज़ाब से बचाओ।
- बुरे साथियों के साथ रहने से अच्छा है कि तुम अकेले रहो।
- गुनाह एक अँधेरा है जिसे सिर्फ़ अल्लाह का डर ही दूर कर सकता है।
- नमाज़ वही है जो दिल लगाकर पढ़ी जाए।
- इल्म (ज्ञान) पैग़म्बरों की मीरास है।
- मुसीबत और परेशानी सब्र (धैर्य) से दूर की जा सकती है।
- यह कितनी बड़ी शर्म की बात है कि सुबह तड़के उठने में तुम चिड़ियों तक से हार जाओ।
- अगर इज़्ज़त चाहते हो तो दूसरों की ख़ातिरदारी करो।
- मंसब और ओहदे के लालच से बचते रहोगे तो इज़्ज़त और शोहरत तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ेगी।
- तीन आदतें इनसान के लिए जान का वबाल होती हैं :

1- ज़ुल्म
2- वादा ख़िलाफ़ी
3- धोखा देना

बच्चों के लिए कुछ हिन्दी पुस्तकें

अन्धा इनसाफ़	मतीन तारिक़ बाग़पती
एक इनसान दो किरदार	माइल ख़ैराबादी
क़ौमों की कहानियाँ	सय्यद नज़र ज़ैदी
गुड्डू की गुड़िया	माइल ख़ैराबादी
तौहीदवाला शहज़ादा	माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी ऐसे थे!	माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी कैसे थे?	इरफ़ान ख़लीली
बिसमिल्लाह की बरकत	माइल ख़ैराबादी
बड़ों का बचपन	माइल ख़ैराबादी
बड़ों की माएँ	माइल ख़ैराबादी
सबक़ आमोज़ क़ुरआनी क़िस्से	माइल ख़ैराबादी
सच्चा वायदा	मतीन तारिक़ बाग़पती
हम ऐसी बनें!	माइल ख़ैराबादी
हमारा इब्ने-बतूता	माइल ख़ैराबादी
आसान कहानियाँ	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 1	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 2	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 3	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 4	अफ़ज़ल हुसैन
क़ुरआन की बातें-1	सय्यद नज़र ज़ैदी
क़ुरआन की बातें-2	सय्यद नज़र ज़ैदी
सच्चा दीन (1,2,3,4)	अफ़ज़ल हुसैन
हमारे बुज़ुर्ग (1, 2)	माइल ख़ैराबादी
हमारे हुज़ूर *(सल्ल.)*	इरफ़ान ख़लीली